

आत्म मार्ग

वर्ष तेइसवां - अंक चौथा, मई 2018
गुरद्वारा ईशर प्रकाश रतवाड़ा साहिब

संचालक

श्रीमान सन्त बाबा वरियाम सिंह जी महाराज (ब्रह्मलीन)
तथा संत माता (बीजी) रणजीत कौर जी (ब्रह्मलीन)

चेयरमैन

सन्त बाबा लखबीर सिंह जी

प्रबन्ध सम्पादक

भाई (डा.) सुखविंदर सिंह डा. जगजीत सिंह (97798 16909)

एडिटर-इन-चीफ

सन्त बाबा हरपाल सिंह जी

मुख्य सम्पादक

Please visit us on internet at :-

For Atam Marg Email : atammarg1@yahoo.co.in,
Website & Live video -

www.ratwarasahib.in
www.ratwarasahib.org } (Every sunday)

Email : sratwarasahib.in@gmail.com

विदेशों में आत्म मार्ग की शाखाएँ

अमेरिका - बाबा सतनाम सिंह अटवाल

फोन तथा फैक्स : 001-408-263-1844

कैनेडा - भाई सरमुख सिंह पंनू, वैनकूवर

फोन : 001-604-433-0408

भाई तरसेम सिंह बैस - मोबाइल 001-604-862-9525

फोन : 001-604-288-5000

भाई जसबीर सिंह राणू - फोन : 001-604-589-9189

इंग्लैंड - बीबी गुरबख्शा कौर तथा भाई जगतार सिंह जग्गी

फोन:0044-121-200-2818 फैक्स :0044-121-200-2879,

भाई अरविंदर सिंह (राज) मोबाइल:0044-7968734058

आस्ट्रेलिया : बीबी जस्प्रीत कौर: मोबाइल-0061-406619858

मासिक पत्रिका न पहुँचने सम्बन्धी पूछताछ

यदि आपको माह की 15 तारीख तक आत्म मार्ग पत्रिका प्राप्त नहीं हो पाती है तो आप कृपया निम्नलिखित सम्पर्क नम्बरों पर कार्यालय समय प्रातः 10.00 बजे से सायं 6.00 बजे तक सम्पर्क करने की कृपा करें -

सम्पर्क न. - 84378-12900, 94172-14391,
94172-14379

Email : atammarg1@yahoo.co.in

Postal Address for any Enquiry,
Money Order's :

'ATAM MARG' MAGAJINE

Gurdwara Ishar Parkash, Ratwara Sahib
(New Chandigarh) P.O. Mullanpur
Garibdas, Teh. Kharar, Distt. S.A.S.
Nagar (MOHALI) - 140901, Pb. India

SUBSCRIPTION - शुल्क (देश)

वार्षिक	आजीवन सदस्यता	प्रति कापी
300/-	3000/-	30/-
320/-	3020/-	(For outstation cheques)

SUBSCRIPTION FOREIGN (विदेश)

	Annual	Life
U.S.A.	60 US\$	600 US\$
U.K.	40 £	400 £
Canada	80 Can \$	800 Can \$
Australia	80 Aus \$	800 Aus \$

प्रकाशन के समस्त अधिकार सुरक्षित हैं।

प्रकाशक, मुद्रक एवं सम्पादक सन्त बाबा हरपाल सिंह जी ने 'आत्म मार्ग' जै आफ सैट प्रिंटरज, 905 इन्डस्ट्रियल एरिया, फेज-2, चण्डीगढ़ से छपवा कर मुख्य कार्यालय 'आत्म मार्ग' रतवाड़ा साहिब, डाकखाना मुल्तांपूर, तहसील खरड़, एस.ए.एस. नगर (मोहाली), पंजाब से प्रकाशित किया।

रतवाड़ा साहिब की संस्थाओं के सम्पर्क नम्बर

* आत्म मार्ग मैगज़ीन (पंजाबी, हिन्दी तथा अंग्रेजी)
9417214391, 9417214379, 8437812900

* गुरू गोबिंद सिंह विद्या मन्दिर सीनियर सैकण्डरी स्कूल
(CBSE) - 0160-2255003

* माता साहिब कौर मुफ्त सिलाई सेंटर - 96461-01996

* सन्त वरियाम सिंह मैमोरियल पब्लिक सीनियर सैकण्डरी स्कूल
(PSEB) अंग्रेजी माध्यम - 95920-55581

* सन्त वरियाम सिंह चैरिटेबल अस्पताल (मुफ्त)

98786-95178, 92176-93845

* इंटरनेशनल डिवाइन स्कूल आफ़ नर्सिंग -
94172-14382

* इंटरनेशनल डिवाइन कालेज आफ़ ऐजूकेशन (बी. एड.)
94172-14382

* अकाल वृद्ध आश्रम (मुफ्त) 98157-28220

विशेष जानकारी के लिए

श्री मान जी - 98551-32009

श्री आखण्ड पाठ साहिब बुकिंग - 94647-12900

आडियो-वीडियो लाईब्रेरी - 98728-14385,
98555-28517

केवल टी.वी. नेटवर्क - 94172-14385

अन्य सम्पर्क नम्बर

98889-10777, 96461-01996, 9417214381

विषय-सूची

1. सम्पादकीय 5
(डा.) भाई सुखविन्दर सिंह
2. बारहमाहा 7
डा. जगजीत सिंह
3. बाबाणियाँ कहानियाँ 11
सन्त बाबा वरियाम सिंह जी
4. गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ ॥ 15
सन्त बाबा वरियाम सिंह जी
5. नानक दुखीआ सभु संसारु ॥ 21
सन्त बाबा वरियाम सिंह जी
6. आत्म ज्ञान 30
सन्त बाबा वरियाम सिंह जी
7. सासि सासि सिमरहु गोबिंद 40
सन्त बाबा हरपाल सिंह जी
8. गुरबाणी अर्थ भण्डार 46
सन्त हरी सिंह जी रन्धावे वाले
9. 1699 की बैसाखी 48
डा. जगजीत सिंह
10. नूरानी मिलाप 50
(डा.) भाई सुखविन्दर सिंह
11. श्री गुरू ग्रन्थ साहिब सर्वोत्तम 52
डा. स्वामी राम जी
12. गुरू गोबिंद सिंह रचित - जफरनामा 55
सन्त निरंजन सिंह नूर
13. नौवें रत्न - सन्त ईशर सिंह जी महाराज, राड़ा साहिब 57
ज्ञानी मेहर सिंह जी
14. गुरू नानक आगमन 59
डा. भाई वीर सिंह जी
15. स्वामी राम जी के प्रेरणात्मक विचार 61
डा. स्वामी राम जी
16. विशेष जानकारी - बैंक खाता, आत्म मार्ग मैगजीन सदस्यता 63
प्रारूप, अस्पताल जानकारी, तथा पुस्तक सूची

सम्पादकीय

(डा.) भाई सुखविन्दर सिंह

**चंदन चंदु न सरद रुति मूलि न मिटई घाँम ॥
सीतलु थीवै नानका जपंदड़ो हरि नामु ॥**

अंग - 709

भारतवर्ष के अन्दर मई तथा जून दो महीने तपिश के माने गए हैं। साल के पूरे बारह महीनों में से सर्वाधिक तपिश इन्हीं दो महीनों में होती है। तपिश से निजात लेने के लिए मनुष्य बहुत सारे उपाय करता है। इस तपिश को ठंडक में बदलने के लिए विज्ञान के अविष्कारों को प्रयोग में लाया जाता है। गर्म लू तथा सूर्य की तेज धूप इस मन को बेचैन करती है। यह मौसमी परिवर्तन प्रतिवर्ष घटित होता है और बार-बार घटित होता है। इन दो महीनों को सुखमय बनाने के लिए ठंडक के उपलब्ध साधन पंखे, कूलर, ए.सी.आदि का प्रयोग किया जाता है और इन साधनों के माध्यम से कुछ राहत भी महसूस होती है लेकिन ये साधन, प्राकृतिक तौर पर पड़ने वाली गर्मी तथा सूर्य की तपिश को धरती पर आने से रोक तो नहीं सकते हैं लेकिन उनके प्रभाव को कम करने के लिए प्रतिरोधक का कार्य अवश्य करते हैं। इस प्रकार सांसारिक गर्मी से बचने के साधन तो मनुष्य द्वारा सृजित कर लिए गए हैं और यह गर्मी केवल शरीर को ही नुक्सान पहुँचाती होगी तथा यह केवल दो महीनों का ही घटनाक्रम होता है। ग्रीष्म ऋतु का समय निकलने के बाद वर्षा ऋतु का आना एक प्राकृतिक घटनाक्रम है। यह स्वभाविक ही है कि जुलाई और अगस्त बरसात के दो महीने हैं। मौसम का परिवर्तन एक प्राकृतिक घटनाक्रम है। इस मौसमी परिवर्तन को यदि हम सम्पूर्ण मानवता के सारे समय के साथ तुलनात्मक विश्लेषण करके देखते हैं तो इससे बहुत सारे प्रश्नचिन्ह खड़े होते हैं। कुछ सुलझे तथा अनसुलझे प्रश्न हमारे सामने खड़े हो जाते हैं, जिनका समाधान गुरवाणी के बिना असम्भव ही है। इन प्रश्नों की निशानदेही इस प्रकार से है - क्या मनुष्य शरीर का मन शान्त है या अशान्त? यदि यह माना जाए कि मन अशान्त है तो क्या इस मन को ठंडक पहुँचाने का कोई साधन है? क्या मन की तपिश चिरस्थाई है अथवा सीमित? क्या मन की अशान्ति तथा बेचैनी के कारण जन्म-मरण का लम्बा चक्र काटना पड़ता है या फिर यह कुछ समय के लिए ही दुखदायी होता है? यहाँ पर केवल एक मनुष्य या किसी खास भूखण्ड पर रहने वाले अथवा केवल भारतवर्ष में रहने वाले मनुष्यों की ही विचार नहीं की जा रही है बल्कि सम्पूर्ण मानवता की विचार चल रही है। इन अनसुलझे प्रश्नों का उत्तर सांसारिक साधन नहीं दे सकते हैं क्योंकि इन जटिल प्रश्नों का उत्तर केवल समर्थ गुरु के पास ही है। मन को

शान्त करने की औषधि और साधन केवल समर्थ गुरु के पास ही है -

हरि अउखधु सभ घट है भाई ॥

गुर पूरे बिनु बिधि न बनाई ॥

गुरि पूरे संजमु करि दीआ ॥

नानक तउ फिरि दूख न थीआ ॥

अंग - 259

पूरा सतगुरु नाम की दवाई देकर इस जन्म-जन्मान्तरो से तप रहे मानवीय मन को शान्त कर देता है और वह इतना शान्त कर देता है कि मनुष्य जन्म-मरण के चक्रव्यूह से निकल जाता है।

सतिगुर कै जनमे गवनु मिटाइआ ॥ अंग - 940

सांसारिक सुखों के साधनों में सड़ रहे अशान्त मन को केवल नाम-वाणी के द्वारा ही ठंडक मिल सकती है -

सुंदर सेज अनेक सुख रस भोगण परे ॥

गिह सोइन चंदन सुगंध लाइ मोती हीरे ॥

मन इछे सुख माणदा किछु नाहि विसरे ॥

सो प्रभु चिति न आवई विसटा के कौरि ॥

बिनु हरि नाम न साँति होइ किनु बिधि मनु धीरे ॥

अंग - 707

नाम रूपी ठंडक ने इसकी मैल भी उतार दी तथा शान्ति भी प्रदान कर दी। फलस्वरूप अब इसकी भटकन भी दूर हो गई है तथा आवागमन भी समाप्त हो गया है। यही खालसे की पदवी है और यही खालसा आदर्श है। इसी सिद्धान्त पर चलते हुए 'आत्म मार्ग' मैगजीन चौबीसवें वर्ष में प्रवेश कर चुका है -

चंदन चंदु न सरद रुति मूलि न मिटई घाँम ॥

सीतलु थीवै नानका जपंदड़ो हरि नामु ॥ अंग - 709

उपर्युक्त सम्पूर्ण विचार का प्रकटीकरण प्रस्तुत पावन शब्द में हो रहा है। चन्दन को ठंडा माना गया है, इसीलिए अपनी तपिश को दूर करने के लिए साँप आदि इसके चारों तरफ लिपटे रहते हैं। इसी प्रकार से शरद ऋतु को भी ठंडा माना गया है, लेकिन ये समस्त बदलाव मन को ठंडा करने के लिए असमर्थ हैं। दरअस्त शीतलता का मुख्य श्रोत तो केवल परमात्मा का नाम ही है। नाम-वाणी के साथ जुड़कर सम्पूर्ण मानवता को शान्ति प्राप्त हो सकती है। संसार भर की बेचैनी, अशान्ति, व क्लह-क्लेश नाम के अभाव के कारण ही हैं। श्री गुरु नानक देव जी का द्वार ही नाम-वाणी का द्वार है। 'नानक कै घरि केवल नामु' इस नाम के अभाव के कारण ही चौरासी लाख योनियों का सफर गले में पड़ा

रहता है -

कई जनम भए कीट पतंगा ॥
कई जनम गज मीन कुरंगा ॥
कई जनम पंखी सरप होइओ ॥
कई जनम हैवर ब्रिख जोइओ ॥ 1 ॥
मिलु जगदीस मिलन की बरीआ ॥
चिरंकाल इह देह संजरीआ ॥ अंग - 176

मन की शान्ति के बिना दुनिया के ठंडक प्रदान करने वाले साधन किसी भी अर्थ के नहीं हैं। वास्तव में जिनके पास सुखों के साधनों की अधिकता है, हम उन लोगों को बड़े कहते हैं। वास्तव में यह एक भ्रान्ति ही है कि अमीर लोग सुखी होते होंगे -

वडे वडे जो दीसहि लोग ॥
तिन कउ बिआपै चिंता रोग ॥ 1 ॥
कउन वडा माइआ वडिआई ॥
सो वडा जिनि राम लिव लाई ॥ अंग - 188

वास्तव में तो बड़े लोग वे हैं जो कि परमात्मा को प्यार करने वाले गुरुमुखजन हैं -

जिस नो बखसे सिफति सालाह ॥
नानक पातिसाही पातिसाह ॥ अंग - 5
बसता तूटी झुपड़ी चीर सभि छिंन ॥
जाति न पति न आदरो उदिआन भूमिंन ॥
मित्त न इठ धन रुपहीण किछु साकु न सिंन ॥
राजा सगली सिंसटि का हरि नामि मनु भिंन ॥
तिस की धूड़ि मनु उधरै प्रभु होइ सुप्रसंन ॥
अंग - 707

वह गुरुमुख प्यारा जो नाम में ओत प्रोत है, सारी सृष्टि का बादशाह है। सांसारिक रजा तो एकाध देश का राजा हो सकता है लेकिन नाम में लीन व्यक्ति तो सारी सृष्टि का बादशाह है -

जा का कहिआ दरगह चलै ॥
सो किस कउ नदरि लै आवै तलै ॥ अंग - 186

प्रकृति भी उसके आदेश को मानती है। उनके बारे में फुरमान है -

जे को जीउ कहै ओना कउ जम की तलब न होई ॥
अंग - 1328

नाम से एकत्व प्राप्त ऐसी आत्माओं की यहाँ पर भी जय-जयकार होती है।

धनि धनि कहै सभु कोइ ॥
मुख उजल हरि दरगह सोइ ॥ अंग - 283

इस नाम धन की बरकत के कारण ही वे सदैव बेपरवाही में रहते हैं -

रंगि हसहि रंगि रोवहि चुप भी करि जाहि ॥
परवाह नाही किसै केरी बाझु सचे नाह ॥

अंग - 473

इस प्रकार की ईश्वरीय आत्माओं के दर्शनों की लालसा गुरुवाणी के अन्दर अरदास के रूप में दृष्टिगोचर होती है -

अंतरजामी पुरख बिधाते सरधा मन की पूरे ॥
नानक दासु इहै सुखु मागै ॥
मो कउ करि संतन की धूरे ॥ अंग - 13

जिना दिसंदड़िआ दुरमति वंजै मित्त असाडड़े सेई ॥
हउ दूढेदी जगु सबाइआ जन नानक विरले केई ॥
अंग - 520

ये परमात्मा के प्यारे 'आपि जपहु अवरह नाम जपावहु।' के सिद्धान्त का अनुपालन करते हुए सम्पूर्ण मानवता को मनसा वाचा कर्मणा ठंडक पहुँचाने में समर्थ हैं -

कबीर सेवा कउ दुइ भले एकु संतु इकु रामु ॥
रामु जु दाता मुकति को संतु जपावै नामु ॥
अंग - 1373

समर्थ सतगुरु के साथ जोड़कर तथा नाम वाणी की युक्तियों को दर्शाते हुए तप रहे मनो को शान्त करना इनका मुख्य मनोरथ व मुख्य कार्य होता है।

इन समस्त गुणों से भरपूर हैं प्यारे महापुरुष श्रीमान सन्त बाबा वरियाम सिंह जी रतवाड़ा साहिब वाले। आप नाम वाणी से एकत्व प्राप्त व मनसा वाचा कर्मणा सम्पूर्ण मानवता को ठंडक प्रदान करने वाले थे। इन आत्म रसिक रूहों के सन्दर्भ में प्यारे श्रद्धालुजनों के लिए दो दिन बहुत ही महत्वपूर्ण हुआ करते हैं। एक तो वह, जिस दिन आप इस मृत्युलोक में शरीर धारण करके आए और दूसरा वह जिस दिन परमेश्वर द्वारा सौंपी गई ड्यूटी को बखूबी निभा कर यानि कि परोपकारी कार्यों को सम्पन्न करके पुनः वापिस परमेश्वर में लीन हो जाते हैं। निःशंक रूप से इन दोनों घटनाओं के बारे में पावन गुरुवाणी का फुरमान है -

जनम मरण दुहहू महि नाही जन परउपकारी आए ॥
जीअ दानु दे भगती लाईन हरि सिउ लैनि मिलाए ॥
अंग - 749

लेकिन फिर भी इन ईश्वरीय रूहों के जन्म दिवस के उपलक्ष्य में हो रहे गुरुमति समागमों में संगत नाम वाणी के साथ जुड़कर शारीरिक और मानसिक शान्ति प्राप्त करती है। प्यारे महापुरुषों के सौ वर्षीय जन्मोत्सव को ध्यान में रखते हुए रतवाड़ा साहिब की पावन धरती पर 17 जून को महान गुरुमति समागम हो रहे हैं। नाम रंग में रंगे हुए गुरुमुखजन, महापुरुषों की करनी कमाई व उनके परोपकारों पर प्रकाश (शेष पृष्ठ 63 पर)

हरि जेठु रंगाला तिसु धणी जिस कै भागु मथंनि ॥

(ज्येष्ठ माह की संक्रान्ति - 14 मई दिन सोमवार)

(डा.) जगजीत सिंह

बारह माहा माझ महला 5 घरु 4
हरि जेठि जुड़ंदा लोड़ीअै जिसु अगै सभि निवंनि ॥
हरि सजण दावणि लगिआ किसै न देई बंनि ॥
माणक मोती नामु प्रभ उन लगै नाही संनि ॥
रंग सभे नाराइणै जेते मनि भावंनि ॥
जो हरि लोड़े सो करे सोई जीअ करंनि ॥
जो प्रभि कीते आपणे सेइ कहीअहि धंनि ॥
आपण लीआ जे मिलै विछुड़ि किउ रोवंनि ॥
साधू संगु परापते नानक रंग मार्णनि ॥
हरि जेठु रंगीला तिसु धणी जिस कै भागु मथंनि ॥

अंग - 134

हरि जेठि जुड़ंदा लोड़ीअै जिसु अगै सभि निवंनि ॥
हरि सजण दावणि लगिआ किसै न देई बंनि ॥

ज्येष्ठ का माह पिछले बैसाख माह की अपेक्षा, अत्यन्त गर्मी वाला तथा दुखदाई माना जाता है। आकाश के अन्दर सूर्य भट्टी की तरह से तपता है जिस वजह से शरीर पसीने से तर-ब-तर हो जाता है और वह बेचैन होकर ठंडी जगह व ठंडी हवा की तलाश करता है। इस मौसम में खाना, पहनना व काम काज कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। पिछला बैसाख का महीना कितना खुशियों भरा व सुहावनी ऋतु वाला था लेकिन यदि हम ध्यानपूर्वक विचार करें तो श्री गुरु जी कहते हैं कि भले ही ऋतु बहुत सुहावनी है लेकिन जो जीव रूपी स्त्रियाँ अपने प्रियतम से बिछुड़ी हुई हैं उनके मन में धैर्य कैसे आ सकता है?

वैसाखि धीरनि किउ वाढीआ जिना प्रेम बिछोह ॥

अंग - 133

दरअस्ल सदी-गर्मी, खुशी-गमी तो मन की वृत्ति है। प्रेम में भीगी हुई जीव-स्त्री हमेशा व प्रत्येक ऋतु में आनन्दमयी अवस्था में विचरण करती है। प्रभु रूपी पति को भूल जाने वाली यानि कि बिछुड़ी हुई जीवात्मा के जीवन में बिछोड़ा व परेशानी ही परेशानी होती है। (दया विसारि विगुचणा ॥

अंग - 133) दरअस्ल महीना चाहे बैसाख का हो अथवा ज्येष्ठ का हो, आवश्यकता इस बात की है कि उसके चरणों के साथ कैसे जुड़ा जाए और उससे निकटता किस प्रकार से हासिल की जाए। हमें तो उसे अपने हृदय में बसाना चाहिए और फिर वह हम सारी जीव स्त्रियों का मालिक सर्व समर्थ पालनहार व प्यार की मूर्ति है, जिसके आगे सारी कायनात, राजे-महाराजे, अमीर-गरीब सभी झुकते हैं (जिसु अगै सभि निवंनि) यदि हम ऐसे प्रभु-पिता, पति-परमेश्वर सर्व सृष्टि के स्वामी, हरि सज्जन के साथ जुड़े रहेंगे तो वह हमारा रखवाला प्रभु, किसी यमदूत, काल-कंटक व दोषियों को आज्ञा नहीं देता है कि वे हमें बाँधकर परलोक में ले जाएँ। इस प्रकार के यमदूत आदि तो प्रभु प्रेमियों के निकट भी नहीं आ सकते हैं। प्रभु जी के साथ जुड़े रहने पर यमों का डर बिल्कुल ही नहीं रहता है। इसलिए -

हरि सजण दावणि लगिआ किसै न देई बंनि ॥

माणक मोती नामु प्रभ उन लगै नाही संनि ॥

रंग सभे नाराइणै जेते मनि भावंनि ॥

जो हरि लोड़े सो करे सोई जीअ करंनि ॥

मनुष्य की अधिक दौड़ तो शक्ति, धन व सम्पत्ति एकत्र करने में लग जाती है। लोग हीरे, मोती, कीमती जवाहरात, सोना-चाँदी, जमीनें-जायदादें आदि एकत्र करने में देशों-परदेशों में दौड़ते रहते हैं। इन्हें एकत्र करने के बाद वे इनकी सम्भाल, सुरक्षा, चोरी-डाके से हिफाजत के लिए बेचैन रहते हुए दुख भोगते हैं। इस धन दौलत के लुट जाने अथवा कानूनी शिकंजों में फँस जाने का भय हमेशा ही बना रहता है। गुरु महाराज जी हमारा मार्ग दर्शन करते हुए हमें इस भय से बचने का मार्ग बताते हैं कि परमात्मा का नाम ही असली धन है और वही वास्तविक, सच्चे व सुच्चे हीरे-मोती या जवाहरात है व अत्यन्त कीमती दौलत है, जिसे चुराया नहीं जा सकता है और यह मनुष्य के हृदय में सुरक्षित रहता है। (माणक मोती नाम प्रभ उन लगै नाही संनि ॥)

प्रभु का नाम व गुरु का शब्द जब हृदय में बस जाता है तो इस रूहानी दौलत को न तो पानी डुबो सकता है और न ही डाकू लूट सकता है और न ही उसे आग जला सकती है -

गुर का बचनु बसै जीअ नाले ॥

जलि नही डूबै तसकरु नही लेवै भाहि न साकै जाले ॥

अंग - 679

जब ऐसा नाम या गुरु का शब्द हृदय में बस जाता है तो चहुँओर प्रभु जी की ही लीलाएँ दृष्टिगोचर होती हैं और फिर प्रभु जी के रंग तमाशे ही मन को प्यारे लगते हैं। धरती, आकाश, चाँद, तारे, सूरज, सितारे, पर्वत, नदी-नाले, समुद्र, पशु-पक्षी जीव आदि सारी प्रभु जी की रचना प्यारी लगती है। (रंग सभे नारङ्गणै जेते मनि भावनि॥) फिर यह भी समझ आ जाती है कि प्रभु जी की सारी रचना, पैदा किए हुए जीव, उसके हुक्म में, उसकी आज्ञा में व उसके प्रेम में क्रियाशील हो रहे हैं। सारे जीव उसी प्रकार के कर्म करते हैं जिस प्रकार के कर्म उस प्रभु को अच्छे लगते हैं (जो हरि लोड़े सो करे सोई जीअ करनि॥)

जो प्रभि कीते आपणे सेइ कहीअहि धनि ॥

आपण लीआ जे मिलै विछुड़ि किउ रोवनि ॥

नाम की दात प्रभु जी की कृपा है। उसके यशगान की प्राप्ति, उसकी कृपा के द्वारा ही होती है। सिमरन में भी वही लगता है जिसे प्रभु, स्वयं सिमरन में लगाता है। ऐसा दैवी विधान है जिसका बखान श्री सुखमनी साहिब की पहली अष्टपदी में बार-बार हुआ है -

से सिमरहि जिन आपि सिमराए ॥ अंग - 263

जिन प्रभु-प्यारों पर प्रभु दयालु होता है वे ही नाम सिमरन में जुड़ते हैं -

सिमरन ते लागे जिन आपि दइआला ॥ अंग - 263

पूरे भाग्यों के कारण है या भाग्यशाली होने पर ही सिमरन की दात प्राप्त होती है -

नानक सिमरनु पूरे भागि ॥ अंग - 263

वही जीव सिमरन में जुड़ते हैं जिनके ऊपर प्रभु जी की दया-दृष्टि होती है -

सिमरहि से जन जिन कउ प्रभ मइआ ॥ अंग - 263

गुरु-प्रभु जिसे स्वयं दैवी सूझबूझ प्रदान करता है वह नाम सिमरन में जुड़कर हरि प्रभु को प्राप्त कर लेते हैं -

करि किरपा जिसु आपि बुझाइआ ॥

नानक गुरमुखि हरि सिमरनु तिनि पाइआ ॥

अंग - 263

ज्येष्ठ के महीने में भी गुरु महाराज जी यह सिद्धान्त दृढ़ करवा रहे हैं कि जिन गुरु-प्यारे जीवों को प्रभु जी ने अपना यशगान प्रदान करके, अपना बना लिया है वे धन्यता योग्य हैं और उन्हें ही लोक-परलोक में शाबाशी प्राप्त होती है (जो प्रभि कीते आपणे सेइ कहीअहि धनि॥)

धनि धनि कहै सभु कोइ ॥

मुख उजल हरि दरगह सोइ ॥

अंग - 283

यह प्रत्यक्ष सच्चाई है कि अपने उद्यम से, अपने जोर से, प्रभु जी को, प्रभु-प्रेम को प्रभु नाम को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। यदि ऐसा होता यानि कि यदि यह जीवों के अपने बस की बात होती अथवा उनके अपने उद्यम के बल से नाम को प्राप्त किया जा सकता तो फिर जीव उससे बिछुड़ कर दुखी ही क्यों होते? (आपण लीआ जे मिलै विछुड़ि किउ रोवनि॥)

कृपा के, ऐसे प्रभु-विधान का भाव यह है कि प्रभु स्वयं ही सारी ब्रह्मीय खेल का रचयिता है, वह स्वयं ही निर्देशक है और वह सभी के अन्दर भरपूर हो रहा है -

करण कारण प्रभु एकु है दूसर नाही कोइ ॥

नानक तिसु बलिहारणै जलि थलि महीअलि सोइ ॥

अंग - 276

ब्रह्मांड, हुक्म का खेल है, हुक्म में ही सारी कायनात क्रियाशील हो रही है -

हुकमै अंदरि सभु को बाहरि हुकम न कोइ ॥

नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोइ ॥

अंग - 1

इसलिए यहाँ इस संसार में मनुष्य की कोई मर्जी नहीं है, बल्कि यहाँ पर तो ईश्वर की रजा का पालन हो रहा है। यहाँ हउमै बन्धन है, प्राप्ति में बाधा है, उसकी कृपा का पात्र बनना ही मनुष्य का कर्तव्य है।

नाम अभिलाषी को नाम प्राप्ति के लिए याचना अथवा अरदास करनी बनती है। ऐसा गुरवाणी का आदेश है -

इक नानक की अरदासि जे तुधु भावसी ॥

मै दीजै नाम निवासु हरि गुण गावसी ॥ अंग - 752

दुइ कर जोड़ि मागउ इकु दाना साहिबि तुठै पावा ॥

सासि सासि नानक आराधे आठ पहर गुण गावा ॥

अंग - 749

साधू संगु परापते नानक रंग माणंनि ॥

हरि जेठु रंगीला तिसु धणी जिस कै भागु मथंनि ॥

जब अरदास सुनी जाती है तो क्या होता है? जब परमात्मा की कृपा होती है तो साधू का संग, गुरु की शरण, सन्तजनों, नाम-अभ्यासियों व नाम रसिकों की संगत प्राप्त होती है, जहाँ नाम की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। (साधू संगु परापते नानक रंग माणंनि॥)

साधू की संगत की ऐसी विचारधारा ही श्री गुरु अरजन देव जी ने श्री सुखमनी साहिब की वाणी की सातवीं व आठवीं अष्टपदी में सविस्तार कथन की है -

साध कै संगि मुख उजल होत ॥

साधसंगि मलु सगली खोत ॥..... अंग - 271

साध कै संगि पाए नाम रतनु ॥

साध कै संगि एक उपरि जतनु ॥ अंग - 271

साध कै संगि पाए नाम निधान ॥

नानक साधू कै कुरबान ॥ अंग - 271

पारब्रह्मु साध रिद बसै ॥

नानक उधरै साध सुनि रसै ॥

साध कै संगि सुनउ हरि नाउ ॥

साधसंगि हरि के गुन गाउ ॥

साध कै संगि लगै प्रभु मीठा ॥

साधू कै संगि घटि घटि डीठा ॥

साध की सोभा साध बनि आई ॥

नानक साध प्रभ भेटु न भाई ॥ अंग - 272

आठवीं अष्टपदी में नाम रसिक ब्रह्मज्ञानी का मुख्य लक्षण यह बतलाया गया है कि उसके मन तथा मुख में सत्य-स्वरूप प्रभु ही निवास करता है तथा प्रत्येक जगह, प्रत्येक रूप में उसे पारब्रह्म ही दिखाई पड़ता है -

मनि साचा मुखि साचा सोइ ॥

अवरु न पेखै एकसु बिनु कोइ ॥

नानक इह लछण ब्रह्म गिआनी होइ ॥ अंग - 272

ब्रह्मज्ञानी प्रभु-प्यार में, प्रभु जी की संगत में नाम के सहारे, सदा जागृत अवस्था में, शाश्वत आनन्द तथा सुख-सहज में विचरण करता है -

ब्रह्म गिआनी कै एकै रंग ॥

ब्रह्म गिआनी कै बसै प्रभु संग ॥

ब्रह्म गिआनी कै नामु आधारु ॥

ब्रह्म गिआनी कै नामु परवारु ॥

ब्रह्म गिआनी सदा सद जागत ॥

ब्रह्म गिआनी अहंबुधि तिआगत ॥

ब्रह्म गिआनी कै मनि परमानंद ॥

ब्रह्म गिआनी कै धरि सदा अनंद ॥ अंग - 273

हरि जेठु रंगीला तिसु धणी जिस कै भागु मथंनि ॥

अर्थात् ज्येष्ठ का महीना उसे ही सुहावना लगता है और उसे ही प्रभु-स्वामी मिलता है जिस मनुष्य के माथे का भाग्योदय हो चुका हो। इस सारी क्रिया में हमारे पूर्वजन्म के संचित कर्मों के अनुसार बने हुए भाग्य ही हमें क्रियाशील करते हैं। गुरु-शब्द के साथ प्यार, गुरुवाणी पढ़नी, सुननी, गुरुवाणी की विचार करनी, सत्संग में जाना, नाम जपने वाले गुरुमुख-गुरसिक्खों के साथ मित्रता का होना बाबाणीआं कहानियाँ करनी, सुननी, गुरुमति दीवानों में महापुरुषों से अमृतमयी गुरुवाणी का कीर्तन श्रवण करना, गुरु महाराज जी तथा गुरसिक्खों की जीवनियों को सुनना तथा मन में गुरु महाराज के लिए प्यार व सम्मान की भावना का पैदा होना, अच्छे भाग्यों की निशानियाँ हैं। नाम अभ्यासियों की संगत में नाम जप कर मस्तिष्क के मन्दे भाग्य घटते-घटते समाप्त हो जाते हैं तथा उत्तम व श्रेष्ठ भाग्यों में उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली जाती है -

जिन कउ तू हरि मेलहि सुआमी

सभु तिन का लेखा छुटकि गइआ ॥

तिन की गणत न करिअहु को भाई

जो गुर बचनी हरि मेलि लइआ ॥ अंग - 1115

सत्संग करने वाले, नाम-वाणी के साथ जुड़ने वाले, गुरसिक्ख, गुरु प्यारे भाग्यशाली हैं, उनका ज्येष्ठ का महीना ही नहीं बल्कि प्रत्येक महीना व प्रत्येक ऋतु ही प्रभु रंग में रंग कर आनन्ददायक हो जाती है तथा सारी जीवन यात्रा सफल हो जाती है।

रागु तुखारी में रचे हुए गुरु नानक देव जी के बारहमाहा में से जेठ का महीना तथा उसकी सरल व्याख्या

राग तुखारी छंत महला 1 बारहमाहा
 माहु जेठु भला प्रीतमु किउ बिसरै ॥
 थल तापहि सर भार सा धन बिनउ करै ॥
 धन बिनउ करेदी गुण सारेदी गुण सारी प्रभ भावा ॥
 साचै महलि रहै बैरागी आवण देहि त आवा ॥
 निमाणी निताणी हरि बिनु किउ पावै सुख महली ॥
 नानक जेठि जाणै तिसु जैसी करमि मिलै गुण गहिली ॥
 अंग - 1108

ज्येष्ठ के महीने में सूर्य की तपिश शिखरों पर होती है, तीव्र गर्मी के कारण धरती, भट्टी की भांति तपती रहती है। जीव-जन्तु व पक्षी आदि सबके लिए गर्मी को सहन कर पाना अत्यन्त कठिन हो जाता है। एक तो बाहर की गर्मी है जो मनुष्य को बहुत बेचैन कर देती है और एक अन्दर की गर्मी या तपिश होती है, विकारों की तपिश होती है जो अन्दर को जलाकर राख कर देती है, खुशियों का नाश कर देती है, उस तपिश से व्यक्ति का आन्तरिक हृदय जलकर समाप्त हो जाता है। गुरवाणी का फुरमान है -

जीउ तपतु है बारो बार ॥
 तपि तपि खपै बहुत बेकार ॥
 जै तनि बाणी विसरि जाइ ॥
 जिउ पका रोगी विललाइ ॥

अंग - 661

यदि हृदय में शीतलता हो, सहजानन्द हो, तो न तो विकारों की गर्मी कुछ बिगाड़ सकती है और न ही ज्येष्ठ माह की तपिश शरीर को जला सकती है -

छाती सीतल मनु तनु ठंडा ॥
 जनम मरण की मिटवी डंझा ॥
 करु गहि काढि लरै प्रभि अपुनै
 अमिउ धारि दिसटंगना ॥

अंग - 1080

सुख, सहज, शान्ति, आनन्द तथा ठंडक का श्रोत, वाहिगुरु सबके घटों में निवास करता है। ऐसे प्रभु के साथ प्यार व मिलाप ही जीव को विकारों की तपिश तथा ज्येष्ठ माह की तप्त लू से बचा सकता है।

सरलार्थ - ज्येष्ठ का महीना शुभ है, अच्छा है और यही नहीं अपितु सारे ही महीने व सारे ही दिन शुभ होते हैं, इसलिए प्रियतम को कभी भी भूलना नहीं चाहिए, ज्येष्ठ की भली ऋतु में परमात्मा क्यों भूले? (माहु जेठ भला प्रीतमु किउ बिसरै) यह ठीक है कि जेठ माह में लू पड़ने से धरती भट्टी की भांति तपने लग पड़ती है। जिस प्रकार से मनुष्य आन्तरिक विकारों की तपिश से बेचैन हो जाता है, उसी प्रकार से बाहर की गर्मी से वह तड़प उठता है। अन्दर व बाहर की तपिश से व्याकुल जीव स्त्री, पति-परमेश्वर के चरणों में मन की

हालत को बचा करने के लिए विनती करती है (थल तापहि सर भार साधन बिनउ करै) इन विनतियों के द्वारा जीव स्त्री प्रभु जी के गुणों की हृदय में सम्भाल करती है क्योंकि उसे आन्तरिक रूप से यह अनुभव प्राप्त है कि प्रभु-गुणों को धारण करने से ही वह प्रभु को अच्छी लग सकती है तथा प्रभु जी को स्वीकार्य हो सकती है (धन बिनउ करेदी गुण सारेदी गुण सारी प्रभ भावा) गुणगान गुणों की सम्भाल, प्रभु प्राप्ति का विशेष साधन है क्योंकि प्रभु जी तो है ही गुणी निधान, गुणों का खजाना -

नानक गावीअै गुणी निधानु ॥

अंग - 2

प्रभु जी को ये गुण अच्छे भी लगते हैं -

हरि के गुण हरि भावदे से गुरु ते पाए ॥ अंग - 725

इसलिए गुणी निधान को स्वीकार्य होने के लिए उसके गुणों का बखान, गायन तथा धारण करना बहुत ही उत्तम कर्म हैं।

प्रभु बैरागी है, वह विकारों से निरलेप है, माया से मुक्त है, सगुण होता हुआ भी निर्गुण है तथा उसका निवास स्थान सदा कायम रहने वाला है, सत्य का महल है और उस महल में उसकी कृपा द्वारा ही पहुँचा जा सकता है। यदि उसकी कृपा हो और जीव रूपी स्त्री उसे प्रिय लग जाए तो ही वह उसके महल में पहुँच कर प्रभु-मिलाप को प्राप्त कर सकती है (साचै महलि रहै बैरागी आवण देहि त आवा) जीव रूपी स्त्री अपने बलबूते पर यह मिलाप हासिल नहीं कर सकती है, माया के बन्धनों के कारण, विकारों की तपिश के कारण, प्रभु जी से बिछुड़ी हुई स्त्री, लाचार व कमजोर है, इसलिए वह प्रभु जी के महल में कैसे पहुँच सकती है? यानि कि वह प्रभु-मिलाप का आनन्द कैसे उठा सकती है? (निमाणी निताणी हरि बिनु किउ पावै सुख महली)। श्री गुरु जी सार रूप में प्रभु मिलाप का मार्ग-दर्शन करते हुए कहते हैं कि ज्येष्ठ की तप्त लू में प्रभु में बसा लेने वाली जो जीव रूपी स्त्री प्रभु जी के साथ जान-पहचान डाल लेती है वह प्रभु गुणों की धारणी होने के कारण उस शान्त-चित्त-आनन्द प्रभु जैसी ही हो जाती है, वह उसकी कृपा की पात्र बनती है तथा उसके साथ मिलकर एकरूप हो जाती है और इस प्रकार से हमेशा के लिए विकारों की तपिश से मुक्त हो जाती है -

नानक जेठि जाणै तिसु जैसी करमि मिलै गुण गहिली ॥



बाबाणियाँ कहानियाँ

सन्त वरियाम सिंह जी
संस्थापक वि. गु. रू. मिशन

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक अप्रैल, अंग - 45)

सन्त महाराज जी राड़ा साहिब वालों ने यह वचन सुनाते हुये फ़रमान किया कि सन्तों की गति या तो सन्त जानते हैं या पारब्रह्म परमेश्वर जानता है। लेखकों, चिन्तकों के बस की बात नहीं हुआ करती कि वह अनुभव की प्राप्ति से हीन रह कर महापुरुषों के जीवन लिखने की लेखकों ने आन्तरिक खोज नहीं की होती। इसलिये इन्हें पता नहीं होता कि नाम शक्ति किस प्रकार संसार में क्रिया करती है। नाम शक्ति (energy) ने सभी खण्ड ब्रह्मण्ड धारण किये हुये हैं तथा उन्हें पूर्ण मर्यादा में रखा हुआ है, इस नाम शक्ति से ही सभी रूपमान हुये हैं। इसी नाम शक्ति के बल पर ही “कोह करोड़ी चलत न अन्त” के हुक्म की डोरी को तोड़ नहीं सकते। जब सन्त महाराज जी को फिर प्रार्थना की गई कि पातशाह! हम मूर्ख लोग आपकी महिमा के बारे में कुछ नहीं जानते पर हमारे मन में बहुत चाव है कि हम भी आप जी की संगत के कारण नाम जपें तथा उन अवस्थाओं के बारे में प्रत्यक्ष रूप से जान सकें जिसका वर्णन अपने प्रवचनों में करते ही रहते हो। महापुरुषों ने समय विचार कर हमारी जानकारी के लिये कुछ वचन करने शुरू कर दिये जो आन्तरिक अवस्थाओं से सम्बन्ध रखते थे। आप जी अपने बारे में बहुत कम बताया करते थे पर जब कोई अति उच्च कोटि का अधिकारी मिल जाता था तो उसके अधिकार को देखते हुये उसकी लगन को और दृढ़ करवाते हुये वह अपने गहरे रूहानी भेदों पर से थोड़ा सा पर्दा उठा लिया करते थे। आप जी ने मुझे बताया कि हमारे अन्दर महापुरुषों का शारीरिक बिछौड़ा होने से वैराग का अति प्रवाह चल पड़ा तथा सचमुच की ऐसी अवस्था प्रतीत होने लगी -

जिसु पिआरे सिड नेहु तिसु आगै मरि चलीऐ।

धिगु जीवणु संसारि ता कै पाछै जीवणा॥

अंग - 83

उन दिनों में हमें प्रकृति के साथ बिल्कुल भी लगाव नहीं था। हम चाहते थे कि कोई ऐसी जगह मिल जाये जहाँ एक मन, एक चित्त होकर प्रभु के साथ जुड़ा जाये। भोजन खाने खिलाने की कोई कल्पना न रहे तथा एक रंग में रह कर समय व्यतीत करें। यह राड़े साहिब की ढक्की एक ऐसे स्थान पर स्थित है जहाँ आने जाने वाले बहुत कम नज़र आते थे क्योंकि एक तो इसके आस पास तीन राज्य एक अंग्रेजी शासन, दूसरा पटियाले का राज्य और तीसरा मलेरकोटला का राज्य मिलते थे ऐसे स्थानों पर सरकारी भगौड़े, डाकू आदि निवास किया करते थे क्योंकि वे एक राज्य को छोड़कर दूसरे राज्य में सहज ही चले जाते थे। यह बात लोगों में आम प्रचलित थी तथा इस ढक्की में कोई आता नहीं था। दूसरा लोगों का आम स्वभाव है कि सूनी जगह से बहुत भय खाते हैं दिन रहते पार हो जायें तो ठीक, वरना रात को कोई नहीं आता था। एक तो उन पर चोरों, डाकूओं, सरकारी भगौड़ों का डर होता है दूसरा अव्यक्त यौनियां, भूतों, प्रेतों से भी डरते हैं। इसलिये यह जगह प्राकृतिक रूप में एकान्त होने के कारण दूसरा इस ढक्की में साहिब श्री गुरु हरगोबिन्द साहिब जी के चरण पड़ने से यह एकान्त भरा महा पवित्र था, जबरदस्ती चित्त नाम के हिलोरे लेने लग जाया करता था। महापुरुषों का विछोड़ा हो गया उनके शरीर के साथ अति प्यार था चाहे उन्होंने शरीरधारी होते हुये हमें यह दृढ़ करवा दिया था कि महापुरुष प्रभु का रूप ही हुआ करते हैं जैसा कि -

सन्त अनंतहि अंतरु नाही॥

अंग - 486

शरीर छूट जाने के बाद शरीर का मोह नहीं करना पर प्रत्यक्ष रूप में यह वचन पालन करना बहुत कठिन है। गुरु नानक पातशाह जी के शारीरिक बिछौड़ा देने के उपरान्त गुरु अंगद साहिब जी महाराज एक कमरा बन्द करके गुप्त होकर बैठ गये। जब कई महीनों के उपरान्त बाबा बुड्डा जी आदि गुरुसिखों ने गुरु ढूँढा और दरवाजे के सामने बनाई

गई दीवार तोड़कर नमस्कार की तो उन्होंने जो पहला वचन उच्चारण किया था वह जिज्ञासुओं के मन में वेदना की हूक तथा विरह की पीड़ा भर देता है जैसे कि -

जिसु पिआरे सिउ नेहु
तिसु आगै मरि चलीऐ।
धिगु जीवणु संसारि
ता कै पाछै जीवणा ॥

अंग - 83

ऐसी ही विरह की पीड़ा हमारे अन्दर दिन रात साक्षात्कार रहती थी चाहे अन्दर से हम जानते हैं कि महापुरुष आप ही परमेश्वर रूप हुआ करते हैं वे न तो कहीं से आते हैं, न ही कहीं जाते हैं; उनका न जन्म होता है, न मरण होता है। वे तो भूली भटकी रूहों को प्रभु से मिलाने आया करते हैं और प्रभु आज्ञा में कार्य करते हैं जैसा कि फ़रमान है -

जनम मरण दुहहू महि नाही
जन परउपकारी आए।
जीअ दानु दे भगती लाइनि
हरि सिउ लैनि मिलाए ॥

अंग - 749

हमारे आन्तरिक बिछौड़े ने एक अजर पीड़ा पैदा कर दी, हर वक्त मन वैराग में रहने लगा। महापुरुष बहुत ही ऊँची अभेद अवस्था में रहने वाले थे उनका वाहिगुरू जी के साथ इकमिक हुआ निजित्व हमारी प्रेरणा का एक बहुत बड़ा स्रोत था। हमारे अन्दर अत्याधिक विरह पीड़ा थी जिसका अनुमान गुरू वाक्य से लगाया जा सकता है -

कबीर बिरहु भुयंगमु मन बसै
मंतु न मानै कोइ।
राम बिओगी ना जीऐ
जीऐ त बउरा होइ ॥

अंग - 1368

विरह के कारण ही अति उत्तम किस्म का वैराग हुआ करता है। वैराग एक ऐसा उड़न खटोला है जिस पर बैठ कर रूहानी सफर बहुत जल्दी पूरा हो जाया करता है। जिज्ञासु को परमेश्वर की प्राप्ति के लिये पहले चार चीजों की बहुत अधिक आवश्यकता हुआ करती है। उसे इस बात का ज्ञान होना चाहिये कि मेरे शरीर में दो तत्व काम कर रहे हैं - एक आत्मा है, दूसरा पाँच तत्वों का बना हुआ शरीर है। इसे स्थूल शरीर कहते हैं इसके अन्दर पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, मन, चित्त, बुद्धि रूपी अन्तःकरण तथा अहमभाव जिसे जीव आत्मा कहते

हैं, हुआ करता है। इससे अति सूक्ष्म एक और शरीर जिसे अज्ञान शरीर कहते हैं, वह कारण शरीर हुआ करता है। जिज्ञासु के मन में यह ज्ञान पैदा हो जाना कि प्रकृति के कार्य, तीनों शरीर परिवर्तनशील हैं तथा नाश होने वाले हैं। यह नाश होने वाले तत्व 'मैं' नहीं हूँ। अपने आप को अमर समझना और जानना तथा सूक्ष्म, स्थूल और कारण शरीर से अलग होकर आत्मा जानना, इस बुद्धि को विवेक बुद्धि कहा जाता है। दूसरे अक्षरों में सत्य आत्मा तथा असत्य प्राकृतिक तत्व की निश्चय पूर्वक पहचान विवेक कहलाती है। आत्मा अविनाशी हुआ करती है। शरीर पल-पल करके नाश की ओर बढ़ता चला जाता है। आत्मा सारे संसार में परिपूर्ण है, यह ज्ञान रूप है, इसका अस्तित्व अमर तथा अटल है, यह अचाह है, असंग है, किसी भी चीज़ का लेप आत्मा को नहीं लगता, लेप-वेप से रहित है। ज्ञान स्वरूप होने के कारण यह न किसी शस्त्र से काटी जा सकती है न पानी में डूबती है, न आग में जलती है, पाँच तत्वों के बने शरीर को अनात्म जान कर मिथ्या जानना क्योंकि मन आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और रूपधारी शरीर एक न एक दिन नाश हो ही जाया करते हैं। संसार को मिथ्या जानना इसके विपरीत आत्मा को सत्य स्वरूप जानना जैसा कि विचार "विचार सागर" में से महापुरुषों के वचन विचारणीय हैं। फ़रमान है -

अबिनासी आतम अचल जग जातै प्रतिकूल।
ऐसो गिआन विवेक है सभ साधन को मूल।

विचार सागर

दूसरी वस्तु जिसकी जिज्ञासु को बहुत आवश्यकता है वह है "वैराग"। बिना वैराग के माया का मोह मन में से कभी दूर नहीं होता। यह जीव सदा ही माया में उलझा रहेगा। जैसा कि गुरू महाराज जी का फ़रमान है -

ना मैं जोग धिआन चितु लाइआ।
बिनु बैराग न छूटसि माइआ ॥
कैसे जीवनु होइ हमारा।

जब न होइ राम नाम अधारा ॥ अंग - 330

इस महावाक्य में फ़रमान है कि जिज्ञासु का मन न तो मिलाप में जुड़ता है और न ही ध्यान में लगता है क्योंकि माया के अनेका नेक फुरने उसके अन्दर उत्पन्न होकर उसे प्रभु के रास्ते पर चलने नहीं देते और उसे सदा ही भुला कर रखते

हैं। उसका मन माया में लीन रहता है। मुँह से राम-राम, अल्लाह-अल्लाह, हरे राम, वाहिगुरू कहता चला जाता है पर सुरत वृत्ति में माया के अनेक रूप समाये रहते हैं। इस माया का स्वरूप बताते हुये गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं कि-

एह माइआ जितु हरि विसरै
मोहु उपजै भाउ दूजा लाइआ। अंग - 921

माया का कार्य ही जीव को अपने पीछे लगा कर प्रभु को भुलाये रखना हुआ करता है जैसा कि फ़रमान है -

एह माइआ जितु हरि विसरै
मोहु उपजै भाउ दूजा लाइआ।
कहै नानकु गुर परसादी जिना लिव लागी
तिनी विचे माइआ पाइआ॥ अंग - 921

यह माया न तो पुस्तकें पढ़ने से दूर होती है और न ही तीर्थों पर भ्रमण करने से और न ही बहुत दान आदि करने से; किसी भी कर्म से माया पीछा नहीं छोड़ती इसका केवल एक ही इलाज लिव की अवस्था में पहुँचना हुआ करता है पर लिव की अवस्था में पहुँचने के लिये जो सीढ़ी है उससे वैराग के डण्डे पर चढ़ कर उतरना पड़ता है क्योंकि गुरू महाराज जी ने ऐसा फ़रमान कर दिया कि -

बिनु बैराग न छूटसि माइआ॥ अंग - 329

मन का स्वभाव कभी सुख महसूस करके उछलता है, कूदता है, कभी दुःख महसूस करके रोता है विलाप करता है कहीं अपना आदर होता देख कर खुश होता है, कहीं अपना निरादर होता देख कर उदास हो जाता है। सो इस तरह से यह मन द्वन्द में रहता हुआ कभी ऊँचा आसमान में चढ़ता है, कभी पाताल में गिर जाता है। यह एक स्थान पर टिक नहीं सकता। यह पन्थी की तरह फलों की प्राप्ति के लिये, चोगे की प्राप्ति के लिये सदा ही उड़ानें भरता रहता है-

कबहू जीअड़ा ऊभि चड़तु है
कबहू जाइ पड़आले।
लोभी जीअड़ा थिरु न रहतु है
चारे कुंडा भाले॥ अंग - 876

पंखी बिरख सुहावड़े
ऊडहि चहु दिसि जाहि।
जेता ऊडहि दुख घणे
नित दाइहि तै बिललाहि। अंग - 66

इस मन की मन-मस्तिष्क जब तक अन्दर प्रबल वैराग नहीं होता तब तक बन्द नहीं होती। यह विनम्र होकर नहीं बैठ सकता। इसलिये रूहानियत के मार्ग पर चलने के लिये वैराग की आवश्यकता हुआ करती है। वैराग किसे कहते हैं, कैसा होता है? इस पर थोड़ा सा विचार कर लेना चाहिये। वैराग के अनेक कारण होते हैं उन कारणों की वजह से घर बार छोड़कर परिवार को पीठ दिखाकर छोड़ जाना, दूर देश में जाकर बस जाना, यह वैराग निम्न श्रेणी का हुआ करता है। इसे मन्द वैराग कहा जाता है। जिसके बारे में महापुरुषों के कथन हैं -

नार मरै घर संपत नासी॥
मूंड मुंडाइ भइआ संनिआसी॥

स्त्री पुत्र का वियोग हो गया या व्यापार में घाटा पड़ गया तथा नौकरी से निकाल दिया गया, सिर पर कर्जा चढ़ गया। कर्जा लेने वाले रोज़ आकर अपमानित करते हैं। पुत्र कहना नहीं मानता, लड़की कहना नहीं मानती। पत्नी रोज़ तानें मारती रहती है और प्यार न करे तो आदमी के मन में विचार आता है कि मैं इन लोगों की जो मेरा साथ नहीं दे रहे, चाहे रिश्ते नाते में मेरे पुत्र, पुत्रियाँ हैं, साथ मेरा क्या सम्बंध हुआ। ऐसे विचार मन में धारण करके घर छोड़ जाया करते हैं पर जब घर वाले पहुँच जाते हैं चापलूसी की बातें करके उसे फिर घर ले आये तो वैराग का नामों निशान भी नहीं रहता। पदार्थ मिल गये उनके भोगों में प्रवृत्त हो गया तो वैराग एक भूला हुआ अक्षर बन जाया करता है। महात्मा लोग ऐसा फ़रमान करते हैं -

होइ उदासी ग्रिहु तजि चलिओ
छुट कै नाही नाटा।
तपसी करिकै देही साथी
मनूआ दह दिस धाना।
ब्रहम चारि ब्रहम चजु कीना
हिरदै भइआ गुमाना।
संनिआसी होइकै तीरथि भ्रमिओ
उसु महि क्रोधु बिगाना॥

महापुरुषों ने वैराग को अच्छी तरह समझाने के लिये बहुत विस्तार से बताया है जैसे कि -

1. कारण वैराग - घर में अपनी स्त्री पर उसके जत-सत के बारे में विश्वास रखता है और कामना करता है कि मेरे सुख

दुःख में समान सहायता करे, मेरे द्वारा की गई गलतियों को न विचारे पर जब इसके विपरीत लक्षण देखे, हर समय कलह क्लेश होने लगे तो अचानक ही घर छोड़ कर किसी आश्रम में चला जाए। अपने आप को उस माहौल में ढालना शुरू कर दिया। इस प्रकार अलग हो जाने को 'कारण वैराग' कहते हैं।

जिस प्रकार भरथरी पिंगला नाम की रानी को बहुत प्यार किया करता था। एक ब्राह्मण को तपस्या के कारण एक अमर फल की प्राप्ति हुई जिसे खा कर उसका शरीर नीरोग तथा काफी समय तक अमर रहना था। बुढ़ापे का उसमें कोई अंश नहीं आना था। ऐसे फल की प्राप्ति हुई तो उस ब्राह्मण ने विचार किया कि संसार से चले ही जाना है, कोई आज जाता है कोई कल जाता है, यह रहने की जगह नहीं है, बड़े बड़े संसार में आये, बड़े बड़े कार्य उन्होंने किये पर यहाँ से सभी ने चले जाना है। मैंने इस फल को खाकर क्या करना है, हो न हो तो मैं अपने धर्मी राजा भरथरी को यह फल क्यों न दे दूँ और वह काफी देर तक नरोया रह कर अपने देश अपनी प्रजा की सेवा करे ब्राह्मण ने यह फल भरथरी जी को दे दिया। भरथरी ने ब्राह्मण को कहा कि ब्राह्मण देवता! हम तो राजा लोग होते हैं यह फल तूने बहुत मेहनत करके प्राप्त किया है। यह तू ही खा लेना क्योंकि तू काफी देर तक निरोग रहकर संसार का भला कर सकेगा। सुन्दर सुन्दर उपदेश देगा। पर ब्राह्मण ने अति विनम्रता पूर्वक कहा कि महाराज आप धर्मात्मा राजा हो कोई भी शत्रु आपके प्रताप के सामने नहीं टिकता सारी प्रजा सुख तथा आराम से उन्नति कर रही है। सो आप द्वारा यह फल खाकर तन्दरुस्त रहना बहुत ही आवश्यक है। यह फल मैं आपको भेंट कर रहा हूँ। आप यह खा लेना। भरथरी ने फल ले लिया। भरथरी का अपनी रानी पिंगला के साथ अथाह प्यार था, हर समय उसके प्यार में लीन रहता था। वह भी राजा के सामने ऐसे हाव भाव बनाती थी जिससे ऐसा प्रतीत हो कि वह भी भरथरी के बिना जीवित नहीं रहेगी। भरथरी ने उसके कपटी प्यार को न समझते हुए यह फल रानी को देने का निर्णय किया कि वह जवान रहेगी, मुझे बहुत प्यारी लगती रहेगी। सो इस आशय से उसने यह फल पिंगला रानी को दे दिया और आप कुछ समय के लिये किसी राजसी कार्य को पूरा करने के लिये राज्य से बाहर चला गया। रानी को फल मिलने के उपरान्त बहुत खुशी हुई उसने विचार किया कि मैं फल खाकर लम्बी उम्र वाली तो हो जाऊँगी पर यदि मेरा प्यारा

मेरे सामने ही मर गया तो मेरा जीना किस काम का? उसका प्यार हाथी खाने के दरोगे के साथ था जो गुप्त रूप में पिंगला रानी को मिलता ही रहता था, उसने वह फल हाथी खाने के दरोगा को दे दिया। उस दरोगे का प्यार एक वेश्या के साथ था, उसने अनेक प्रकार से विचार करने के बाद वह फल वेश्या को दे दिया। वेश्या ने विचार कर देखा कि मेरा जीवन तो पापों की खान है यदि मैं काफी समय तक जिन्दा रही तो बेअन्त पाप मेरे सिर और चढ़ जायेंगे। मैं तो पैसों से तन बेचती हूँ, यही काम लम्बी उम्र तक करना पड़ेगा, मैं नरक का कीड़ा हूँ। क्यों न मैं यह फल भरथरी राजा को दे दूँ। जब भरथरी राजा वापिस आया तो उसने वह फल उसे देते हुये प्रार्थना की कि यह अमर फल मेरे हाथों में आया है। इसके खाने से बहुत देर तक आदमी स्वस्थ रहता है, बुढ़ापा नहीं आता। आप यह अमर फल खा लो और अपनी प्रजा को काफी समय तक सुख तथा शान्ति प्रदान करते रहो। राजा हैरान हो गया कि वेश्या के हाथ में यह फल कैसे आया? उसने राजसी जलाल में आकर खोज शुरू कर दी, खोज करते समय उसे मालूम हुआ कि यह फल मेरी परम प्यारी रानी ने हाथी खाने के दरोगे को दे दिया क्योंकि यह बात प्रकट करती है कि मेरी रानी का प्यार मेरे साथ नहीं बल्कि मेरे एक बहुत छोटे कर्मचारी के साथ है। उस दरोगा ने भी रानी के प्यार का एक ढोंग बनाया हुआ था और रानी काम वश अन्धी होकर इस बेवफाई से अनजान थी। उस दरोगे का वेश्या के साथ जो अति निम्न दर्जे की औरत होती है जिनका काम पैसे लेकर अपना शरीर बेचना होता है, ऐसे नरक के कीड़े को उसने प्यार के कारण फल दे दिया। उस वेश्या ने मेरे जीवन में श्रद्धा रखते हुये यह फल मुझे दिया जिससे यह भली भान्ति प्रकट हो जाता है कि संसार का प्यार बिल्कुल ही झूठा है इसमें कोई सौभाग्यशाली ही है जिसे सच्चा प्यार मिल जाये। पर मैं तो इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि या तो समरथ गुरु से प्यार किया जा सकता है या प्रभु के साथ किया जा सकता है। इन वहमों में पड़े हुये राजा ने राज पाट का त्याग कर दिया और गोरख नाथ से मन्त्र प्राप्त करके अनेक योग साधनायें करके, अपने जीवन का लक्ष्य प्राप्त किया। इसमें कारण यह बना कि कोई भी किसी को स्थायी प्यार नहीं करता इस प्रकार के वैराग को "कारण वैराग" कहा जाता है?

'चलता'



गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ।।

सन्त बाबा वरियाम सिंह जी
संस्थापक वि. गु. रू. मिशन

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक अप्रैल, पृष्ठ - 41)

राजा कहने लगा कि सूची बनाओ। वजीर कहने लगा, महात्मा जी! अक्लमन्दों की सूची तो बनाई जा सकती है लेकिन मूर्ख तो सारा संसार ही है क्योंकि यह स्वयं ही अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारता है और फिर दुखी होता है। इसे कोई दूसरा दुखी नहीं करता है बल्कि वह स्वयं अपने कर्मों के कारण ही दुखी होता है।

राजा बोला, चलो फिर बड़े-बड़े मूर्खों की तो सूची बना लो क्योंकि बड़े-बड़े मूर्ख भी तो होंगे। वजीर बोला, महाराज, यह बात स्वीकार्य है। अब उन्होंने एक कमेटी बना ली और लिखना शुरू कर दिया। लिखते-लिखते अब लोगों को पता ही होता है कि यह मूर्खों का ही परिवार है। वे उस परिवार में चले गए और कहने लगे कि राजा ने इस प्रकार से कहा है। उस परिवार का मुखी बोला कि हमारा नाम जरूर ही लिख लेना। उन्होंने उस बुजुर्ग को पूछा कि तुम मूर्ख कैसे हो?

वह बुजुर्ग बोला, देखो! एक बार हमारा एक नजदीकी रिश्तेदार मर गया। नजदीक ही मेरी ससुराल है और बच्चों का मामा परलोक सिधार गया। मैं हल चला रहा था और बच्चों के मामा के मरने की खबर आ गई। मैंने अपने बड़े बेटे को कहा कि जाओ तुम चले जाओ। अन्तिम संस्कार के बाद तुम सबके बीच बैठना और कुछ बातचीत कर लेना।

मैंने इसे भेजा लेकिन यह कुछ भी नहीं बोला और वापिस आ गया। मैंने पूछा, तुम कुछ बोले भी थे? यह कहने लगा कि मैं तो कुछ भी नहीं बोला। मैंने पूछा तुम्हारा मामा परलोक सिधार गया, तुमने कुछ भी बात नहीं की?

कहने लगा, नहीं पिता जी! मैंने तो कुछ भी नहीं कहा।

मैंने कहा, तुम तो मूर्ख हो और मैंने अपने छोटे बेटे को भेज दिया।

वह बोला, पिता जी! मैं तो इस प्रकार की जगहों पर कभी गया ही नहीं, मैं वहाँ पर क्या बोलूँगा?

मैंने कहा, जिस प्रकार से लोग कहेंगे उसी प्रकार से तुम भी बातचीत कर लेना और यह सब कौन सा किताबों

में लिखा होता है। सुन-सुना कर बातचीत कर ली जाती है। वह जिस समय वहाँ पर पहुँचा तो बाहर की तरफ उनके दुश्मन खड़े हुए थे, वे कहने लगे अच्छा हुआ यह मर गया हमें तो स्वाद ही आ गया। ये जो बहुत ही बुरे और बिगड़े हुए लोग हैं, अब इन्हें पता चलेगा। मरने के बिना इन्होंने ठीक ही नहीं होना था। एकाध व्यक्ति इनका और मरेगा तभी ये अच्छी तरह से ठीक होंगे।

जब वह आगे आया तो सयाने लोग एकत्र होकर परिवार वालों को सांत्वना दे रहे थे। इसने सोचा कि कहीं मैं सारी बातों को भूल ही न जाऊँ, इसलिए यह जाते ही खड़ा हो गया और कहने लगा, भाइयो! मेरी बात सुनो! बहुत ही अच्छा हुआ यह मर गया है, इनका एकाध व्यक्ति और भी मरना चाहिए तभी मेरे नानके ठीक होंगे। वहाँ पर एकत्र लोगों ने उसे पकड़ कर खूब पीटा। पिटाई खाने के बाद यह वापिस आ गया। पिता जी ने पूछा, बेटा क्या हुआ? उसने अपनी सारी वार्ता कह सुनाई।

बेटा बोला, पिता जी! आपने ही तो कहा था कि जो बातें लोग कह रहे होंगे वही तुम भी कह देना। मैंने बाहर इस प्रकार की बातें सुनी थीं और वही मैंने कह दीं।

पिता कहने लगा, तुम तो बड़े वाले (पुत्र) से भी अधिक मूर्ख हो।

बुजुर्ग कहने लगा मैंने कहा कि यह तो मुझे ही जाना पड़ेगा। अब उसने अपने पैर भी नहीं धोए और जैसे उसने बैलों को हाँकने वाला डंडा हाथ में लिया हुआ था, उसी प्रकार से यह चल पड़ा क्योंकि उसे डर था कि कहीं सारे लोग उठ ही न जाएँ और मैं सबसे माफी माँग लूँ। वह जल्दी से पहुँच गया और बोला, भाइयो! मैं आप सबसे क्षमा याचना करने आया हूँ क्योंकि मैंने पहले बेटे को भेजा था वह कुछ बोला ही नहीं और दूसरे को भेजा तो जो उसने कहा आपको पता ही है अच्छा हुआ आप लोगों ने उसकी पिटाई की है।

खड़ा होकर कहने लगा, भाइयो! अब तो आप लोग मुझे माफ कर दो लेकिन अब जब आपका अगला कोई भी मरेगा तो मैं स्वयं ही आया करूँगा। कहने लगे कि यह तो

सारा परिवार ही मूर्खों का है। इसलिए उन्होंने उनका नाम लिख लिया कि यह तो सचमुच ही मूर्खों का परिवार है।

अब सारी कमेटी अपनी रिपोर्ट लेकर राजा के पास पहुँच गई। उन्होंने पहरेदारों को कहा कि उन्होंने राजा साहिब को मिलना है। पहरेदारों ने कहा कि राजा तो बीमार है। वे कहने लगे कि हमने तो उन्हें जरूर ही मिलना है और यह सोने की छड़ी उनको पकड़ानी है।

अब वे राजा के पास पहुँच जाते हैं।

राजा - कहो क्या कहना है? मैं तो अब बस जाने ही वाला हूँ।

कमेटी वाले बोले, कहाँ जा रहे हो?

राजा - इस बारे में तो मुझे भी पता नहीं है कि मैं कहाँ जा रहा हूँ लेकिन जैसे कि मैंने सुना है मैं किसी लम्बी यात्रा पर जा रहा हूँ -

जिह मारग के गने जाहि न कोसा ॥ अंग - 264

कमेटी के सदस्य कहने लगे कि फिर इतने लम्बे सफर पर फौजें तुम्हारे साथ जा रही हैं?

वह बोला, नहीं।

रानियाँ जा रही हैं?

राजा बोला - नहीं।

खजाने जा रहे हैं।

राजा बोला - नहीं।

और धन, जायदाद, सम्पत्ति जा रही है?

राजा बोला - नहीं यह सब तो कुछ भी मेरे साथ नहीं जा रहा है। मैं तो खाली हाथ यहाँ से जा रहा हूँ, पैर भी मेरे नंगे हैं।

वे बोले, राजन! फिर यह सबसे बड़े मूर्ख वाली छड़ी आप ही सम्भाल लो। तुमने अपनी सारी जिन्दगी बरबाद कर दी और तुम्हें यह भी पता नहीं चला कि तुम्हारा अगला सफर क्या है? और वहाँ पर किस चीज की जरूरत है? इसका सीधा तात्पर्य यह है कि तुम्हीं सबसे बड़े मूर्ख हो इसलिए यह अपनी छड़ी आप ही सम्भाल लो।

गुरु महाराज जी फुरमान करते हैं, प्रेमीजनो!

मूरखा सिरि मूरखु है जि मंने नाही नाउ ॥

अंग - 1015

जो नाम की महिमा को नहीं जानता है, वह तो मूर्खों का सरदार है क्योंकि उसे यही नहीं पता है कि नाम क्या चीज होती है और वह क्या सहायता करता है। आप इस प्रकार से फुरमान करते हैं -

**धारना - पिआरे जी, जिथे ना कोई मात पिता,
उथे नाम ने सहाइता करनी।**

जह मात पिता सुत मीत न भाई ॥

मन उहा नामु तेरै संगि सहाई ॥

जह महा भइआन दूत जम दलै ॥

तहि केवल नामु संगि तेरै चलै ॥

जह मुसकल होवै अति भारी ॥

हरि को नामु खिन माहि उधारी ॥ अंग - 264

अजामल को अन्तिम श्वास आ रहा था और यमदूत आ चुके थे तथा उसे पकड़ कर ले जाने ही वाले थे -

अंतकाल जमदूत वेखि पुत नराइणु बोलै छहिआ।

भाई गुरदास जी, वार 10/20

वह महा पापी था और सारी उम्र पाप करता रहा, जब उसने यमदूतों को देखा तो अपने पुत्र को आवाज मार दी। उसके पुत्र का नाम नारायण था।

अजामल प्रीति पुत्र प्रति कीनी करि नाराइण बोलारे ॥

मेरे ठाकुर कै मनि भाइ भावनी जमकंकर मारि

बिदारे ॥ अंग - 981

जिस समय उसने नारायण कह कर अपने पुत्र को आवाज मारी तो उस समय उसका ध्यान परमात्मा की तरफ चला गया, इसका फल क्या हुआ?

जमगण मारे हरि जनाँ

गइआ सुरग जमुडंडु न सहिआ।

नाइ लए दुखु डेरा ढहिआ ॥

भाई गुरदास जी, वार 10/20

एक बार वाहिंगुरु कहने मात्र से ही -

एक चित जिह इक छिन धिआइओ

काल फास के बीच न आइओ।

अकाल उसतति

जो व्यक्ति ऐसे नाम की महिमा को नहीं मानता है, उसके बारे में महाराज जी कहते हैं -

मूरखा सिरि मूरखु है जि मंने नाही नाउ ॥

अंग - 1015

अब नाम मिलता कहाँ से है? गुरु जी कहते हैं कि तुम यही काम करने के लिए संसार पर आए हो -

जिसु वखर कउ लैनि तू आइआ ॥

राम नामु संतन धरि पाइआ ॥

तजि अभिमानु लेहु मन मोलि ॥

राम नामु हिरदे महि तोलि ॥

लादि खेप संतह संगि चालु ॥

अवर तिआगि बिखिआ जंजाल ॥

धनि धनि कहै सभु कोइ ॥

मुख उजल हरि दरगह सोइ ॥

इहु वापारु विरला वापारै ॥

नानक ता कै सद बलिहारै ॥

अंग - 283

विरले पुरुष हैं जो नाम का व्यापार करते हैं, शेष सारा संसार तो विषय-विकारों में लिप्त होकर निन्दा, चुगली, ईर्ष्या, बखीली, झगड़े-फसाद, वैर भाव, नशों का सेवन आदि प्रकार के व्यापारों में उलझ कर रह जाते हैं। इस प्रकार से महाराज जी कहते हैं कि जब तक व्यक्ति को गुरुमन्त्र प्राप्त नहीं होता है और उसकी कमाई करके वह नाम तक नहीं पहुँचता है तो फिर उसे मनुष्य ही मत कहो -

गुर मंत्र हीणसु जो प्राणी धिगंत जनम भ्रसटणह ॥

अंग - 1356

जिसे गुरुमन्त्र ही प्राप्त नहीं हो सका है, उसका तो जन्म ही धिक्कार योग्य है, तिरस्कृत है। चाहे वह सांसारिक तौर पर कितने ही बड़े रुतबे वाला है लेकिन उसका तो जन्म ही निरर्थक है और उसकी तुलना महाराज जी इस प्रकार से करते हैं -

कूकरह सूकरह गरधभह काकह सरपनह तुलि खलह ॥

अंग - 1356

उसका जन्म कुत्ते, सूअर व साँप के तुल्य है और मरने के बाद भी उसे इसी प्रकार की योनियों में जाना पड़ता है। क्योंकि वह सार वस्तु को ग्रहण ही न कर सका। गुरु या परमात्मा की दरगाह में उसे जगह ही नहीं मिल पाती है।

गुरु दसवें महाराज जी मालवे में गए हुए हैं। उस जगह का जो तलवंडी वाला सरदार था और जिसका नाम 'डल्ला' था, वह महाराज जी की बहुत सेवा कर रहा है। महाराज जी उसकी सेवा से बहुत प्रसन्न हुए। एक रात वह पहरा दे रहा है। महाराज जी ने जिस समय भी आवाज दी तो जवाब में डल्ला ही बोला। महाराज जी बहुत प्रसन्न हो गए और कहने लगे, भाई डल्ला! आज तुमने सेवा करके मुझे प्रसन्न कर लिया है। माँगो क्या माँगते हो? जो भी सांसारिक चीज तुम्हें चाहिए वह तुम्हें दिलवा देते हैं। वह हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया और चरणों पर झुककर तथा गले में पल्ला डालकर कहने लगा, महाराज जी! यदि आप प्रसन्न हुए हो तो अपनी दरगाह में एक मूढ़ा जितनी जगह दिलवा दो क्योंकि मैं भी आपके साथ ही रहना चाहता हूँ और आपको मिलना चाहता हूँ या आप में अभेद होना चाहता हूँ। महाराज जी चुप कर गए। कहने लगे, भाई डल्ला! तुम कोई सांसारिक चीज माँगो, राज भाग माँग लो, रिद्धियाँ-सिद्धियाँ माँग लो, धन-धान्य कुछ भी माँग लो तुम्हें सब कुछ दिलवा देते हैं। बाल-बच्चे, गाएँ-

भैंसों, जमीन-जायदाद, जो भी कहो, दिलवा देते हैं। लेकिन प्रेमीपुरुष! जहाँ तक दरगाह में जगह वाली बात है वह इस प्रकार से नहीं मिल पाया करती है। दरअस्त तुम्हारा व हमारा अभी सम्बन्ध नहीं जुड़ा है। तुम तो अभी हमसे बहुत दूर हो क्योंकि तुमने अभी सिक्खी धारण नहीं की है। जाओ किसी गुरसिक्ख को पूछ लो, वह तुम्हें सारी बात समझा देगा।

भाई डल्ला का चेहरा मुरझा गया कि महाराज जी कह रहे हैं कि दुनिया माँग लो, हमारी प्रसन्नता कायम है लेकिन दरगाह के लिए नहीं, दरगाह में तो तुम जा ही नहीं सकते हो।

डल्ला एक गुरसिक्ख के पास चला जाता है। वह कहने लगा, भाई डल्ला! तुम उदास हो? वह कहने लगा कि सेवा करके गुरु जी को प्रसन्न किया था लेकिन कोई मतलब सिद्ध नहीं हुआ। उन्होंने कहा, माँगो क्या माँगते हो?

मैंने माँग लिया कि सच्चे पातशाह जी! अपने चरणों में निवास बख्श दो ताकि मैं सदैव आपके साथ ही रहूँ और दरगाह में भी आपके साथ ही रहूँ। मैं अधिक नहीं दरगाह में केवल एक पीढ़े जितनी जगह ही प्रदान कर दीजिए।

गुरसिक्ख ने कहा भाई डल्ला! यह जगह तुम्हें कैसे मिल सकती है, जब तक कि तुम सिक्खी को धारण ही नहीं करते हो। क्योंकि तब तक तुम्हारा गुरु के साथ सम्पर्क ही नहीं हो पाता है। डल्ला बोला, मैं सिक्ख क्यों नहीं हूँ? मैं सेवा करता हूँ, गुरु जी का पूरा ध्यान रखता हूँ।

गुरसिक्ख बोला, भाई डल्ला! अभी तुम्हें सिक्खी की समझ नहीं आई है और न ही तुम्हें अभी सिक्खी प्राप्त हो पाई। देखो यदि तुमने गुरु की दरगाह में रहना है, गुरु को मिलना है, तो फिर मेरी बात को ध्यानपूर्वक सुनो।

**धारना - जे मिलणै कलगीआँ वाले नूँ,
जे मिलणै बाजाँ वाले नूँ,
खंडे दा अंग्रित छक लै।**

हरि सचे तखत रचाइआ सति संगति मेला।

नानक निरभउ निरंकार विचि सिधाँ खेला।

गुर सिमरि मनाई कालका खंडे की वेला।

पीवहु पाहुल खंडेधार हुइ जनम सुहेला।

गुर संगति कीनी खालसा मनमुखी दुहेला।

वाह वाह गोबिंद सिंघ आपे गुरु चेला।

भाई गुरदास जी, दूजा, वार 41/1

भाई डल्ला! नौवीं पातशाही तक सिक्खी को धारण करने की जो रीति थी वह चरणामृत देकर सम्पन्न हुआ करती थी लेकिन गुरु दशमेश जी ने सन्त को सिपाही भी बना

दिया। दुनिया की रक्षा करने वाला, दुनिया के दुखों को दूर करने वाला, अपने आपका त्याग करने वाला। भद्रपुरुष! गुरु जी ने इन्हें खण्डे की पाहुल देकर, अभिमन्त्रित जल देकर इन्हें खालसा बना डाला। जब तक तुम उस पावन जल को नहीं पिआगे, जब तक तुम्हें गुरु का मन्त्र प्राप्त नहीं हो पाएगा, तब तक तुम्हारा सम्बन्ध गुरु के साथ नहीं जुड़ पाएगा। गुरु के साथ सम्बन्ध तभी जुड़ पाएगा जबकि वह गुरु से मन्त्र प्राप्त कर ले। इसलिए तुम्हें अमृतपान करना पड़ेगा। उसके बाद केवल पीढ़ी जितना ही नहीं फिर तो चाहे एक मुरब्बा जगह ही रोक लेना। गुरु की दरगाह छोटी नहीं है, वह तो बहुत बड़ी है, उसमें तो बहुत अधिक दुनिया समा सकती है। इस प्रकार से जो नाम है -

जह मात पिता सुत मीत न भाई ॥

मन उहा नामु तरै संगि सहाई ॥ अंग - 264

गुरुमन्त्र को जप-जप कर ही 'नाम' ने अन्दर प्रकट होना है। वैसे नाम तो पहले से ही अन्दर विद्यमान है -

नउ निधि अंघ्रितु प्रभ का नामु ॥

देही महि इस का बिसामु ॥

सुंन समाधि अनहत तह नाद ॥

कहनु न जाई अचरज बिसमाद ॥ अंग - 293

अतः जब तक नाम के मण्डल में हमारी सुरति नहीं पहुँचती है तब तक हम कुछ भी नहीं हैं।

हमारा शरीर भी बहुत जटिल प्रकार का है। मैं विनती कर रहा था कि -

नउ दरवाजे काइआ कोटु है दसवै गुपतु रखीजै ॥

बजर कपाट न खुलनी गुर सबदि खुलीजै ॥

अंग - 954

जो शब्द हमने पाँच प्यारों से लिया है, यह घर रखने के लिए नहीं है, बल्कि यह जप करने के लिए होता है। इसे सन्तजनों के मार्गदर्शन में जपो क्योंकि सन्तजनों के पास नाम का जप करने का ढंग होता है, सरल फार्मूला होता है, इसलिए वे सरल मार्ग बतला देते हैं। गुरवाणी का कथन है -

कबीर सेवा कउ दुइ भले एकु संतु इकु रामु ॥

रामु जु दाता मुकति को संतु जपावै नामु ॥

अंग - 1373

सन्तजनों की ड्यूटी लगी होती है और उनकी पदवी इतनी बड़ी होती है कि -

जनु नानकु धड़ि मंगै तिसु गुरसिख की

जो आपि जपै अवरह नामु जपावै ॥ अंग - 306

श्री गुरु नानक साहिब कह रहे हैं कि मैं उस गुरसिख के चरणों की धूल माँगता हूँ जो कि स्वयं नाम जपता है संसार

को नाम जपाता है। प्रेमीजनो! तुम्हें नाम वस्तु प्राप्त हो गई है, तुम्हारे अन्दर नाम है। इस नाम ने ही तुम्हारे बज्र कपाट खोलने हैं -

बजर कपाट न खुलनी गुर सबदि खुलीजै ॥

अंग - 954

गुरु के शब्द की चाभी इसे लगनी है। जब चाभी लग गई तो दिखाई क्या पड़ता है? गुरु जी फुरमान करते हैं कि-

अनहद वाजे धुनि वजदे गुर सबदि सुणीजै ॥

अंग - 954

आत्मिक संगीत की धुनें व्यक्ति के अन्दर स्वतः ही हो रही हैं। व्यक्ति की वृत्ति फिर सूक्ष्म हो जाती है। विरले लोग हैं जो सुनते हैं। वहाँ पर सुनता क्या है? वहाँ पर शब्द की धुन सुनाई पड़ती है, फिर यही नहीं अन्धकार भी दूर हो जाता है और प्रकाश हो जाता है -

नामु जपत कोटि सूर उजारा.....॥ अंग - 700

करोड़ों सूरजों के प्रकाश का ज्ञान हो जाता है फिर दिखाई क्या पड़ता है -

तितु घट अंतरि चानणा करि भगति मिलीजै ॥

अंग - 954

फिर अब आगे वाहिगुरु ही रह गया उसकी भक्ति करो, भक्ति करके उसके साथ ही अभेद हो जाओगे -

सभ महि एकु वरतदा जिनि आपे रचन रचाई ॥

अंग - 954

फिर देखोगे कि समस्त शरीरों में एक ही वाहिगुरु व्याप्त है -

वाहु वाहु सचे पातिसाह तू सची नाई ॥

अंग - 947

अतः मैं विनती कर रहा था कि इस घर को दिखाने वाला गुरु होता है -

घर महि घरु देखाइ देइ सो सतिगुरु पुरखु सुजाणु ॥

पंच सबद धुनिकार धुनि तह बाजै सबदु नीसाणु ॥

दीप लोअ पाताल तह खंड मंडल हैरानु ॥

तार घोर बाजित्त तह साचि तखति सुलतानु ॥

सुखमन कै घरि रागु सुनि सुनि मंडलि लिव लाइ ॥

अंग - 1291

दसवें द्वार में निःसंकल्प अवस्था में वृत्ति को ले जाकर तुम यह राग सुनो -

अकथ कथा बीचारीअै मनसा मनहि समाइ ॥

अंग - 1291

जिस समय अन्दर विवेक मण्डल में तुम्हारी वृत्ति जाएगी

तो फिर तुम्हें पता चल जाएगा वाहगुरु क्या है? अन्यथा पता ही नहीं चल पाता है बेशक चाहे कितनी भी किताबों को पढ़ लो क्योंकि साधना के बिना अन्दर प्रकाश नहीं हो पाएगा। जब प्रकाश हो गया तो फिर मन का नाश हो जाना है। फिर अवस्था हो जानी है - वासनाक्षय, मनोनाश तत्व ज्ञान। फिर होगा क्या? गुरु जी फुरमान करते हैं कि -

उलटि कमलु अंग्रिति भरिआ

इहु मनु कतहु न जाइ॥

अंग - 1291

जो मन दौड़ता घूम रहा था, छलांगें लगा रहा था, वह अब कहीं नहीं जाता है। वह उस अमृत में मस्त हो गया। जो हृदय रूपी कमल उल्टा हुआ पड़ा था, वह सीधा हो गया और उसके अन्दर अमृत भर गया। अब तो सुख ही सुख हैं, दुख जरा सा भी नहीं है, महान सुख में आ गया। भाई मतीदास जी के सिर पर जब आरा चलाने लगे, लकड़ियों में उसे बाँध दिया गया तो जल्लाद ने जब उसके चेहरे को देखा तो वह हैरान हो गया कि इसका चेहरा तो लाल सुर्ख हो गया है, चेहरे में से लाली दिखाई पड़ रही है, नेत्रों में से चमक आ रही है। उसने आरा चलाने से पहले मतीदास को सवाल कर दिया कि मतीदास! एक बात बताओ कि आज तक मैंने बहुत लोग चीरे हैं, लेकिन मरे हुए लोगों को चीरा है, जीवित मनुष्य को मैंने आज तक नहीं चीरा है क्योंकि वे तो मेरे चीरने से पहले ही मरने जैसे हो चुके होते थे। आज हमारा वास्ता एक जीवित व्यक्ति के साथ पड़ा है। हमें यह बताओ कि इस दर्दनाक समय पर तुम्हारे मुख पर लाली क्यों आ गई है? क्योंकि मौत को देखकर तो बड़े-बड़े शूरवीर भी पीले पड़ जाते हैं और फिर तुम्हारे नेत्रों के अन्दर भी एक विशेष प्रकार की चमक आ गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि तुमने कोई बहुत भारी नशा पिया हुआ है।

भाई मतीदास जी बोले, जल्लाद! तुमने इस बात से क्या लेना है, ये बातें तुम्हें समझ आने वाली नहीं हैं, तुम अपना काम शुरू करो।

वह बोला, मुझे कोई सेवा बतलाओ? भाई मतीदास जी ने कहा, बन्धु! मेरा मुँह मेरे गुरु की तरफ कर दो क्योंकि जिस समय मेरे सिर पर आरा चल रहा हो तो मेरे गुरु का चेहरा मेरे सामने हो और गुरु का वजूद मेरे हृदय में बसा हुआ हो। इसके बाद उसने बताया कि प्रेमीपुरुष! हमारे अन्दर नाम का प्रकाश है, हम लोग किसी का बुरा नहीं करते हैं हमें किसी से ईर्ष्या नहीं है, तुम मेरे ऊपर आरा चलाने लगे हो, यदि मैं चाहूँ तो तुम्हें और तुम्हारे बादशाह को शाप देकर गरक कर दूँ लेकिन हम तो सबका भला ही मनाने वाले लोग हैं। हमारा गुरु जो है -

सतिगुरु सभना दा भला मनाइदा

तिस दा बुरा किउ होइ ॥

अंग - 302

हमारे अन्दर जो हृदय रूपी कमल है, वह सीधा हो चुका है और उसके अन्दर अमृत लबालब भरा पड़ा है और इसीलिए हमें किसी भी चीज का दुख नहीं लगता है। चाहे कोई जन्म ले अथवा मर जाए हमारा चित्त कभी उदास होता ही नहीं है क्योंकि हमारे अन्दर जो अमृत की लहरें हैं, वह उल्लास ही उल्लास उत्पन्न करती हैं।

अतः महाराज जी कहते हैं - 'उलटि कमलु अंग्रिति भरिआ इहु मनु कतहु न जाई।' अमृत के कारण अब मन तनिक भी विचलित नहीं होता है।

उलटि कमलु अंग्रिति भरिआ

इहु मनु कतहु न जाइ ॥'

अजपा जापु न वीसरै आदि जुगादि समाइ ॥

अंग - 1291

अब वाहगुरु-वाहगुरु कहने की जरूरत नहीं है बल्कि अब तो स्वतः ही धुन सुनती है। सारे संसार में से धुन सुनती है। उसके बिना अब हमें कोई अन्य आवाज सुनाई नहीं पड़ती है। हम तो जिधर भी देखते हैं -

हरहट भी तू तू करहि बोलहि भली बाणि ॥

अंग - 1420

और कण-कण में से नाम की धुन उत्पन्न होती है -

जो बोलत है म्रिग मीन पंखेरु

सु बिनु हरि जापत है नही होर ॥ अंग - 1265

कहते कि अब अजपा-जाप चल पड़ा है -

सभि सखीआ पंचे मिले गुरुमुखि निज घरि वासु ॥

अंग - 1291

अब सारी सखी-सहेलियाँ इकट्ठी हो गई हैं, मन आँखें व कान सभी दिव्यावस्था में पहुँच चुके हैं, अब हमारा निज घर में निवास हो गया है। महाराज जी कहते हैं कि प्रेमीजनो! जो इस अवस्था पर पहुँच गया है -

सबदु खोजि इहु घरु लहै नानकु ता का दासु ॥

अंग - 1291

अब मैं उसका दास बनने को तैयार हूँ जो कि इस अवस्था तक पहुँच गया है। अतः मैं इस शरीर की बात कर रहा था। यह वैसे ही नहीं है साध संगत जी! इसके अन्दर वाहगुरु निवास करता है -

काइआ नगरु नगर गड़ अंदरि ॥

साचा वासा पुरि गगनंदरि ॥

असथिरु थानु सदा निरमाइलु

आपे आपु उपाइदा ॥
 अंदरि कोट छजे हटनाले ॥
 आपे लेवै वसतु समाले ॥
 बजर कपाट जड़े जड़ि जाणै
 गुर सबदी खोलाइदा ॥
 भीतरि कोट गुफा घर जाई ॥
 नउ घर थापे हुकमि रजाई ॥
 दसवै पुरखु अलेखु अपारी
 आपे अलखु लखाइदा ॥

अंग - 1033

मैंने पहले जो आप लोगों को देवताओं की बात सुनाई थी, उन्हें यह शरीर प्राप्त नहीं होता है। यह सारी प्रणाली तो केवल मनुष्य शरीर में ही सम्भव है। वाहिगुरू मनुष्य के अन्दर है, अमृत मनुष्य के अन्दर है, फिर यह शरीर देवताओं से उत्तम है या नहीं? देवताओं का शरीर तो इस मनुष्य शरीर के सामने कुछ भी नहीं है इसीलिए गुरू महाराज जी फुरमान करते हैं -

धारना - जिहड़ी देही नूं लोचदे देवते,
 उहो देही तै नूं मिल गई, पिआरिआ।

गुर सेवा ते भगति कमाई ॥
 तब इह मानस देही पाई ॥
 इस देही कउ सिमरहि देव ॥
 सो देही भजु हरि की सेव ॥ 1 ॥
 भजहु गोबिंद भूलि मत जाहु ॥
 मानस जनम का एही लाहु ॥ 1 ॥ रहाउ ॥
 जब लगु जरा रोगु नही आइआ ॥
 जब लगु कालि ग्रसी नही काइआ ॥
 जब लगु बिकल भई नही बानी ॥
 भजि लेहि रे मन सारिगपानी ॥

अंग - 1159

इतना सुख देवताओं को मिलता है जिसे कि हम गिन ही नहीं सकते हैं। समझने के लिए हम कह सकते हैं कि एक बादशाह की अपेक्षा खरबों गुणा सुख बैकुण्ठ लोक में बैठे देव जनों को हुआ करता है लेकिन फिर भी ये मनुष्य शरीर को पाने के लिए लालायित रहते हैं। इसका कारण यह है कि उन्हें वाहिगुरू जी के दर्शन नहीं हो पाते हैं -

एका माई जुगति विआई तिनि चले परवाणु ॥
 इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीबाणु ॥

अंग - 7

ब्रह्मा जी पैदा करते हैं, शिव जी समाप्त करते हैं तथा विष्णु जी पालते हैं।

जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु ॥
 एहु वेखै एना नदरि न आवै बहुता इहु विडाणु ॥

अंग - 9

वाहिगुरू जी तो उन्हें (देवताओं को) देखते हैं लेकिन उन्हें वाहिगुरू दिखाई नहीं पड़ता है जबकि मनुष्य के यदि नेत्र खुल जाएँ तो उसे वाहिगुरू जी के दर्शन हो जाते हैं और यहीं बस नहीं बल्कि उसे तो कण-कण में से वाहिगुरू ही दिखाई पड़ने लग जाता है। फिर तो जिधर भी देखता है -

गुरहि दिखाइओ लोइना ॥ 1 ॥ रहाउ ॥
 ईतहि उतहि घटि घटि घटि घटि
 तूही तूही मोहिना ॥

अंग - 407

प्रेमीजनों! ये आँखें देवताओं के पास नहीं हैं। इतना बढ़िया यह शरीर है और तुम लोग इस बेशकीमती शरीर को यूँ ही बरबाद कर रहे हो। अतः इसे यूँ ही निगुरेपन में मत गंवाओ। गुरू वाले बनने के बाद मान लो हम अपनी मंजिल पर नहीं भी पहुँच पाए तो फिर मनुष्य जन्म हमें दोबारा प्राप्त हो जाएगा। फिर भी नहीं पहुँच पाए तो फिर मिल जाएगा क्योंकि फिर गुरू अपने सिक्ख को अन्य योनियों के चक्रव्यूह में नहीं पड़ने देता है -

बिनु सतिगुर नाउ न पाईऔ बुझहु करि वीचारु ॥
 नानक पूरै भागि सतिगुरु मिलै सुखु पाए जुग चारि ॥

अंग - 649

यदि गुरू का बन जाए तो फिर 43 लाख 20 हजार साल के सुख की गारंटी गुरू ले लेता है। अतः इस प्रकार की कृपादृष्टि कल्युग के अन्दर गुरू जी ने अपने सिक्खों पर की हुई है और इतनी रियायतें दी हुई हैं -

एक चित जिह इक छिन धिआइओ

काल फास के बीच न आइओ।

अकाल उसतति

यदि एक बार वाहिगुरू बोलने से हमारे सारे पाप काटे जाएँ और फिर भी हम इस महान मार्ग का अनुसरण न करें तो फिर इससे ज्यादा मन्दे भाग्य हमारे क्या हो सकते हैं? यदि यह कहे कि मैं तो स्वयं ही एक बार वाहिगुरू कह लूँगा तो यह अपने आप से ही कोई भी नहीं कह पाता है या यूँ कह लो कि यह फलीभूत नहीं हो पाता है। यथा -

राम राम सभु को कहै कहिऔ रामु न होइ ॥

गुर परसादी रामु मनि वसै ता फलु पावै कोइ ॥

अंग - 491

इस प्रकार से हमने जो भी विचारों की हैं, इन्हें विचारों और अपने हृदय में धारण करो। अब समय अनुमति नहीं देता है इसलिए अब यहीं पर समाप्ति है।

अनंद साहिब, गुर सतोतर, अरदास, हुकमनामा।



नानक दुखीआ सभु संसारु ॥

सन्त बाबा वरियाम सिंह जी
संस्थापक वि. गु. रू. मिशन

सतिनामु श्री वाहिगुरु,
धन श्री गुरु नानक देव जए महाराज।
डंडउति बंदन अनिक बार सरब कला समरथ॥
डोलन ते राखहु प्रभु नानक दे करि हथ॥
अंग - 259

फिरत फिरत प्रभ आइआ परिआ तउ सरनाइ॥
नानक की प्रभ बेनती अपनी भगती लाइ॥
अंग - 289

धारना - कोई नाउं ना जाणै मेरा,
गुरु जी सभ तेरी वडिआई औ।
तूं विसरहि ताँ सभु को लाग चीति आवहि ताँ सेवा॥
अवरु न कोउ दूजा सूझै साँचे अलख अभेवा ॥ 1 ॥
चीति आवै ताँ सदा दइआला लोगन किआ वेचारे ॥
बुरा भला कहु किस नो कहीऔ सगले जीअ तुसारे ॥
1॥ रहाउ ॥
तेरी टेक तेरा आधारा हाथ देइ तूं राखहि ॥
जिसु जन उपरि तेरी किरपा
तिस कउ बिपु न कोउ भाखै ॥ 2 ॥
एहो सुखु एहा वडिआई जो प्रभ जी मनि भाणी ॥
तूं दाना तूं सद मिहरवाना नामु मिलै रंगु माणी ॥3॥
तुधु आगै अरदासि हमारी जीउ पिंडु सभु तेरा ॥
कहु नानक सभ तेरी वडिआई
कोई नाउ न जाणै मेरा॥ अंग - 383

धारना - नाम जपीए ताँ दूर हुंदे दुखड़े,
सेवा करके माण पाईदै।

साधु संगत जी! अपनी चित्त वृत्तियों को एकाग्र करते हुए उच्च स्वर में बोलो, सतिनाम श्री वाहिगुरु। श्री गुरु जी की अपार कृपा की बदौलत आप सब गुरु दरबार में पहुँचे हो। मुझसे पहले यह बतलाया जा रहा था कि दो चीजें उत्तम भाग्य के बिना पराप्त नहीं हो पाया करती हैं। उनमें से एक है हरियश और दूसरी है साधु की संगत। हजारों जन्मों तक भटकने के बाद यदि कहीं वाहिगुरु जी की कृपा दृष्टि हो जाए तब कहीं ये दो चीजें प्राप्त हुआ करती हैं -

कबहू साधसंगति इहु पावै ॥
उसु असथान ते बहुरि न आवै ॥

अंतरि होइ गिआन परगासु ॥
उसु असथान का नही बिनासु ॥
मन तन नामि रते इक रंगि ॥
सदा बसहि पारब्रहम कै संगि ॥ अंग - 278

धमोट के इलाके के पुण्य कर्म अपने फल देने के लिए जागृत हुए हैं, तब कहीं उन्हें यह हरियश श्रवण करने का सर्वोत्तम अवसर प्राप्त हो रहा है। शब्द के माध्यम से मैंने विनती की है कि नाम स्मरण करने से व्यक्ति के समस्त दुखों का नाश हो जाता है। नाम स्मरण न करने के कारण ही यह संसार दुखों के चक्रव्यूह में घिरा हुआ है और यह संसार इसीलिए शुरू से ही दुखी है। महात्मा बुद्ध जी आज से लगभग 2500 वर्ष पहले हुए हैं, आप कपिल वस्तु, जो नेपाल के अन्दर एक छोटा सा राज्य था, के राजा थे। राजभाग में से कोई सुख न मिल पाने के कारण आपने राजभाग का त्याग कर दिया और बहुत अधिक तपस्या करने के बाद आपने एक नतीजा निकाला कि संसार बहुत दुखी है और आपने यहाँ तक कह दिया कि यह संसार तो दुखों का घर है, किसी को सन्तान का दुख है, किसी को रूप-पैसे की किल्लत है, किसी को राजनैतिक संकट है यानि किसी को कोई दुख है और किसी को कोई दुख है। इस संसार में सुखी तो कोई भी नहीं है और श्री गुरु नानक पातशाह जी ने तो यह निर्णय ही कर डाला कि -

धारना - दुखीआ सभ संसार,
नानक दुखीआ-नानक दुखीआ।

बड़ी-बड़ी हस्तियों का जिक्र करते हुए महाराज जी ने इस शब्द के माध्यम से यह कथन किया है कि -

सहंसर दान दे इंदु रोआइआ ॥
परस रामु रोवै घरि आइआ ॥ अंग - 953

इन्द्र देवता को यहाँ के चक्रवर्ती बादशाह की अपेक्षा दस खरब गुणा ज्यादा सुख है लेकिन जो असली सुख है वह उसे भी प्राप्त नहीं हो सका। बाह्य सुख तो उसे असीम हैं। माया, जायदाद, पद, प्रतिष्ठा, प्रतिभा आदि तो बहुत दिखाई पड़ती हैं लेकिन आन्तरिक तौर पर व्यक्ति को घुन लगा हुआ है क्योंकि बाहरी सुखों के माध्यम से यह व्यक्ति आन्तरिक

तौर पर सुखी नहीं हो सकता है। महाराज जी ने इसमें बड़ों-बड़ों की गिनती की है -

अजै सु रोवै भीखिआ खाइ ॥
 असी दरगह मिलै सजाइ ॥
 रोवै रामु निकाला भइआ ॥
 सीता लखमणु विछुड़ि गइआ ॥
 रोवै दहसिरु लंक गवाइ ॥
 जिनि सीता आदी डउरु वाइ ॥
 रोवहि पाँडह भए मजूर ॥
 जिन कै सुआमी रहत हदूरि ॥ अंग - 954

तेरहवां वर्ष जब पांडवों का आया, जो कि अज्ञातवास का था, तो वे रात के समय छिपते हुए चोरी-चोरी मिला करते थे उन्होंने अपने नाम बदल लिए और मेहनत-मजदूरी करने लग पड़े। कोई जानवरों की देखभाल का काम करने लग पड़ा, कोई घोड़ों के अस्तबल में लग गया। भीमसैन ने रसोइए का कार्य सम्भाल लिया। अर्जुन ने कोई और काम कर लिया तथा द्रौपदी, रानी की नौकरानी बन गई। उस समय वे हैरान हुआ करते थे कि हम लोग भारतवर्ष के चक्रवर्ती बादशाह हैं और हमारा यह क्या हाल हो रहा है। वे रात के समय, कहीं दूर जंगल में जाकर आपस में मिला करते थे। वहाँ पर पहले तो सारे इकट्ठे होकर रोया करते थे। हालाँकि उनके ऊपर सोलह कला सम्पूर्ण श्री कृष्ण महाराज जी की पूर्ण कृपा थी लेकिन फिर भी रोते-रोते उनका समय निकल रहा था।

रोवै जनमेजा खुइ गइआ ॥
 एकी कारणि पापी भइआ ॥ अंग - 954

इस प्रकार से गुरु जी फुरमान करते हैं सारी दुनिया रोती है और शब्द के अन्तिम भाग में आप फुरमान करते हैं कि -

रोवहि सेख मसाइक पीर ॥
 अंति कालि मतु लागै भीड़ ॥
 रोवहि राजे कंन पड़ाइ ॥
 घरि घरि मागहि भीखिआ जाइ ॥
 रोवहि किरपन संचहि धनु जाइ ॥
 पंडित रोवहि गिआनु गवाइ ॥
 बाली रोवै नाहि भतारु ॥
 नानक दुखीआ सभु संसारु ॥
 मंने नाउ सोई जिणि जाइ
 अउरी करम न लेखै लाइ ॥ अंग - 954

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह जीव सुखी कैसे हो सकता है? गुरु जी स्वयं जवाब देते हैं कि -

मंने नाउ सोई जिणि जाइ ॥
 अउरी करम न लेखै लाइ ॥ 1 ॥ अंग - 954

अब नाम को मानने वाली बात हमें समझ में नहीं आती है कि नाम के मानने के बारे में महाराज जी ने यह क्या कह दिया है? गुरु जी ने इस सम्बन्ध में स्पष्ट संकेत भी किए हैं कि -

मंने की गति कही न जाइ ॥
 जे को कहै पिछै पछुताइ ॥
 कागदि कलम न लिखणहारु ॥
 मंने का बहि करनि वीचारु ॥
 असा नामु निरंजनु होइ ॥
 जे को मंनि जाणै मनि कोइ ॥ अंग - 3

उस नाम को मानना क्या होता है, इसके बारे में बहुत बड़ी व्याख्या है। संक्षेप रूप में, मैं इसे बताने का प्रयत्न करता हूँ कि जिस समय व्यक्ति के अज्ञान में, प्रकाश आ जाए (जो कि अन्धकार से भरा पड़ा है) उसके आन्तरिक नेत्र खुल जाएँ और जिसके द्वारा उसे घट-घट में परमेश्वर नजर आने लग पड़े, वह जो मण्डल है उसे आत्मिक समझ का मण्डल कहते हैं यानि कि वह नाम का मण्डल हुआ करता है। उस नाम को मानने से सारे दुखों का नाश हो जाता है। उसी को नाम का मानना कहा जाता है। परमेश्वर का नाम सबसे श्रेष्ठ है -

सरब रोग का अउखदु नामु ॥ अंग - 274
 दूसरा है -

गुर की सेवा पाए मानु ॥ अंग - 864

गुरु की सेवा करो उससे सम्मान प्राप्त होता है, सारी वासनाएँ पूरी होती हैं और सुख मिलता है। जिस किसी ने भी गुरु की सेवा तन, मन व धन से की है, उसे मन माँगी मुरादेँ प्राप्त हो जाया करती हैं। कोई भी इसे आजमा कर देख सकता है -

धारना - करके कोई देख लए, सेवा तों मिलदै मेवा।

पंच बार गंग जाइ, बार पंच प्राग नाइ,
 तैसा पुंन एक गुरसिख कउ नवाए का॥
 सिख कउ पिलाइ पानी भाउ करि कुरखेत,
 अस्रमेध जग फल सिख कउ जिवाए का॥
 जैसे सत मंदर कंचन के उसार दीने,
 तैसा पुंन सिख कउ इक सबद सिखाए का॥
 जैसे बीस बार दरसन साथ कीआ काहू,
 तैसा फल सिख कउ चापि पग सुआए का॥
 कबित भाई गुरदास जी 673

भाई गुरदास जी, जिनकी वाणी को श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी की कुंजी का खिताब प्राप्त है, सेवा के पुण्य को ब्यान करते हैं। दरअस्ल भाई गुरदास जी ने गुरुमति के सिद्धान्तों को, अपनी वारों व कवित्तों के माध्यम से बड़े ही

सरल ढंग से प्रकट करके हमारे ऊपर बहुत ही बड़ा परोपकार किया है अन्यथा गुरुमति के सिद्धान्तों को सही रूप में समझ पाना अत्यन्त कठिन है। आप कथन करते हैं कि जिस प्रकार से मान लो यदि कोई व्यक्ति पाँच बार गंगा स्नान करने के लिए जाए और पाँच बार प्रयाग का स्नान करने के लिए जाए यानि कि दस बार तीर्थ स्नान करने का जितना फल प्राप्त होता है, उतना फल एक गुरसिक्ख को स्नान करवा देने पर उसे घर बैठे-बैठे ही प्राप्त हो जाता है। अब अनुमान लगा लो कि दस बार तीर्थ यात्रा पर जाने में कितना समय और मेहनत तथा धन लगता है। इसी प्रकार से यदि एक गुरसिक्ख को पानी पिला दिया, बन्दगी करने वाले महापुरुष को पानी पिला दिया तो उसे कुरुक्षेत्र में जाकर दान-पुण्य करने जितना फल प्राप्त हो जाता है। यदि किसी सिक्ख को श्रद्धापूर्वक भोजन करवा दे तो उसे अश्वमेध यज्ञ करने के बराबर फल की प्राप्ति हो जाती है। इसी प्रकार से सात सोने के मन्दिर बना कर दान करने का जितना फल प्राप्त होता है, उतना फल एक गुरसिक्ख को एक शब्द सिखा देने से प्राप्त होता है। कोई व्यक्ति यदि किसी सच्चे साधू के दर्शनार्थ बीस बार जाता है तो उसे जितना फल प्राप्त होता है तो उतना फल किसी थके हुए गुरसिक्ख की टहल सेवा करके उसे सुला देने का प्राप्त हुआ करता है। कोई भी नेक कार्य कर लो कोई भी दान-पुण्य कर लो तो प्रत्येक चीज का प्रतिकर्म होता है। बुरा कार्य कर लो तो बहुत अधिक तकलीफ में से जीवात्मा को गुजरना पड़ता है -

**लै फाहे राती तुरहि प्रभु जाणै प्राणी ॥
तकहि नारि पराईआ लुकि अंदरि ठाणी ॥
संनू देनि विखंम थाइ मिठा मट्टु माणी ॥
करमी आपो आपणी आपे पछुताणी ॥
अजराईलु फरेसता तिल पीड़े घाणी ॥ अंग - 315**

बहुत अधिक भयावह सजाएँ मिलती हैं, यदि नेक कार्य कर लो तो उसी प्रकार से सम्मान प्राप्त होता है जय-जयकार होती है तो परलोक गमन करने पर पुष्प वर्षा होती है। कोई भी कर्म कर लो चाहे वह अच्छा है या बुरा उनका फल तो उसी के अनुरूप मिलना अवश्यम्भावी है। ऐसा नहीं है कि कोई भी किया गया कर्म यूँ ही फलरहित रह जाएगा। अत्यन्त छोटा सा कर्म भी फल प्रदान करता है।

यहाँ पर मैं एक विनती करता हूँ कि भारतवर्ष में एक राजा हुआ है, जिसे कि सब लोग जानते हैं, उसका नाम था - बिक्रमजीत। खासतौर पर इस धमोट गाँव के साथ उसका बहुत गहरा सम्बन्ध है क्योंकि वह इनका पूर्वज था। विनैपाल से वह छब्बीसवीं पीढ़ी ऊपर था। अब 31वीं या 32वीं पीढ़ी चल रही है। इस प्रकार से समझ लो कि वह इनका पूर्वज

था और भारतवर्ष का बादशाह था। एक तरफ ताशकन्द तक उसका राज्य था दूसरी तरफ अफगानिस्तान व ईरान तक उसका राजभाग था। इसी प्रकार बर्मा से लेकर नीचे विंध्याचल पर्वत तक उसका राज्य था। दक्षिण में उसका राजभाग नहीं था क्योंकि वहाँ पर सलवान राजा राज्य करता था। उस समय का वह यानि कि विक्रमजीत का बहुत ही प्रतापवान राजा था। एक बार उसने अपने राज पण्डित तथा ज्योतिषों को बुलाया और उनसे कहा कि मुझे यह बतलाओ कि मैंने कौन सा ऐसा पुण्य कर्म किया है जिसके फलस्वरूप मुझे इतना बड़ा राजभाग प्राप्त हुआ है? क्योंकि जो अच्छा बादशाह होता है उसे इस बात का ज्ञान हो जाता है कि मैंने पिछले जन्म के अन्दर कोई न कोई बहुत बड़ा पुण्य कर्म किया है जिसकी बदौलत मुझे राजभाग प्राप्त हो सका है। पिछले जन्म में किए हुए दान को ही बादशाह भोगते हैं। अकबर के मन में भी यह बात आ गई थी कि मैंने ऐसा कौन सा बड़ा दान कर दिया जिसकी बदौलत मुझे इतना बड़ा राजभाग प्राप्त हो गया है? उसे भी ज्योतिषों ने बतला दिया था।

इधर बिक्रमजीत ने ज्योतिषों पर यह सवाल कर दिया कि यदि मुझे सही-सही न बतलाया गया तो फिर मैं तुम लोगों को सजाएँ दूँगा। सात दिनों के अन्दर-अन्दर मुझे इसका जवाब मिलना चाहिए और मेरी सन्तुष्टि भी होनी चाहिए। जिस समय ज्योतिषों ने अपने फलादेश देखे तो उन्हें कुछ जवाब ही प्राप्त न हो पाएँ। अब वे लोग घबरा गए कि बादशाह को अब क्या जवाब दिया जाएगा? सात दिन बीत गए। राज ज्योतिषी न खाना अच्छी तरह से खा पाता था न ही सो पाता था। दरअसल जब व्यक्ति के ऊपर चिन्ता सवार हो जाती है तो उसकी चेहरे की खुशी और नींद समाप्त हो जाती है और उसका हाजमा भी पूरी तरह से खराब हो जाता है। लड़की कहने लगी, पिता जी आप छः-सात दिन से बहुत अधिक चिन्ताग्रस्त हैं लेकिन बताते कुछ नहीं हैं। यदि कोई चिन्ता हो तो उसका कारण बतला देना चाहिए न कि उसे अपने अन्दर ही रखना चाहिए। लड़की बोली, पिता जी! दीवार को भी पूछ लेना चाहिए क्योंकि क्या मालूम कोई जवाब मिल जाए। मैं आपकी बेटी हूँ, आप मुझे बताओ कि आपको क्या समस्या आ गई है?

आप न तो भोजन ठीक से ग्रहण करते हो और न ही ठीक से सोते हो। बस सारा दिन हिसाब-किताब ही जोड़ते रहते हो लेकिन यूँ प्रतीत होता है कि शायद आपको कोई हल प्राप्त नहीं हो पा रहा है।

वह बोला, बेटी! तुम्हारी बात शत प्रतिशत ठीक है, मैं इस समय बहुत अधिक चिन्ता में हूँ क्योंकि कल को मेरे जीवन का निर्णय होने वाला है। बादशाह इतना नाराज हो

चुका है कि वह कह रहा है कि या तो मेरे प्रश्न का उत्तर दो या फिर मैं तुम्हें सजा-ए-मौत दे दूँगा।

बेटी बोली, क्या बात हुई है? कौन सा सवाल बादशाह पूछ रहा है?

राज पण्डित यानि कि उस लड़की का पिता बोला, बेटी! वह पूछ रहा है कि मैंने कौन सा ऐसा पुण्य कर्म किया है जिसकी बदौलत मुझे इतना बड़ा राज भाग प्राप्त हुआ है? बेटी बोली, फिर कुछ पता चला?

पिता ने कहा हिसाब-किताब में से तो कुछ भी नहीं निकल रहा है। बस एक छोटे से पुण्य के बारे में पता चलता है लेकिन वह सही नहीं है। बेटी बोली, पिता जी! आप इस तरह से परेशान मत होओ, मुझे इस सवाल का जवाब आता है। आप निश्चिन्त होकर बादशाह को कह दो कि मेरी लड़की तुम्हें बिल्कुल ठीक-ठीक जवाब बतला देगी।

यह बात बादशाह तक पहुँच गई। राजा ने लड़की को बुला लिया फलस्वरूप सारे ज्योतिष खुश हो गए कि शायद अब हम लोग बच जाएँ, बादशाह ने लड़की को सवाल कर दिया कि बेटी! हमें यह बताओ कि मैंने कौन सा ऐसा पुण्य कर्म किया है जिसकी बदौलत मुझे सारे हिन्दोस्तान का राजभाग प्राप्त हो गया है?

वह बोली, महाराज जी! मैं सवाल का जवाब तो दे देती हूँ लेकिन आपका मन नहीं मानेगा आपको विश्वास नहीं आएगा। हाँ, यहाँ से 35 मील की दूरी पर एक साधू बैठा है, वह आपको बतलाएगा उसके जवाब से आपको सन्तुष्टि हो जाएगी। जो कुछ मुझे पता है वह उसे भी पता है।

बादशाह उस बताए हुए स्थान पर पहुँच जाता है। लड़की ने बता दिया कि उसकी निशानी यह है कि वह राख को ही घोल-घोल कर पीता रहता है। बादशाह वहाँ पर पहुँच गया और उसने प्रश्न कर दिया वह साधू बोला, बादशाह! बतला तो मैं देता हूँ लेकिन तुम्हें विश्वास नहीं आ पाएगा इसलिए मैं तुम्हें एक साधू के पास भेजता हूँ जो कि यहाँ से 40 कि. मी. की दूरी पर है। वह साधू अंगारों को ही खाता है। जलते-जलते कोयलों को दांतों के नीचे दबा लेता है और फिर उसे चबा लेता है।

बादशाह ने उस जगह पर पहुँच कर उसी प्रकार से सवाल कर दिया। उस साधू ने जवाब दिया कि इसका जवाब तो मैं भी दे सकता हूँ लेकिन इसका जवाब कल को पैदा होने वाला एक बच्चा देगा। तुम्हारे अधीनस्थ जो अमुक राजा है उसके घर कल को एक लड़का पैदा होगा। तुम वहाँ पर जाकर आज ही बैठ जाओ क्योंकि वह बच्चा पैदा होने

के कुछ समय बाद ही मर जाएगा। वह बच्चा व्यस्क लोगों की भांति बात करेगा और तुम्हारी तसल्ली करवा देगा उसके बाद उसने मर जाना है। जब तुम्हारी तसल्ली हो जाएगी, तो उसके बाद मैंने भी मर जाना है और वह जो राख घोल-घोल कर पीता है, उसने भी मर जाना है।

राजा हैरान हो गया कि यह भी अजीब तरह की लीला है और सारी बात आगे से आगे उलझती ही जा रही है लेकिन राजा वहाँ पर चला गया और उसने उस राजा को हुक्म कर दिया कि जो बच्चा कल को पैदा होना है, उसे पैदा होते ही मेरे पास लेकर आओ। मैंने उससे एक प्रश्न करना है।

अब अगले दिन जब वह बच्चा पैदा हुआ तब वे उसे राजा के पास ले आए। राजा ने प्रश्न किया कि ऐ बालक! क्या तुम बता सकते हो कि पूर्वजन्म में मैंने कौन सा ऐसा पुण्य कर्म किया है जिसके फलस्वरूप मुझे इतना बड़ा राजभाग प्राप्त हो गया है?

वह बच्चा बोला, हाँ मैं बतला सकता हूँ क्योंकि मैं तुम्हें इसका जवाब देने के लिए ही जन्म लेता हूँ तथा मरता हूँ। अच्छा हुआ तुम आ गए हो और अब मैं भी मुक्त हो जाऊँगा। वह बच्चा बोला, बादशाह! तुम, मैं और वह राख घोल-घोल कर पीने वाला साधू तथा अंगार खाने वाला साधू, हम चारों लोग पूर्वजन्म में एक जंगल में तप साधना किया करते थे। जो तुम्हारे राज पण्डित की लड़की है, वह हम लोगों को दो-दो रोटियाँ दे जाया करती थी। जिस समय हमारा तप प्रभु जी के चरणों में स्वीकार्य हो गया तो उस समय वहाँ पर विष्णु जी प्रकट हुए और उन्होंने हम लोगों की परीक्षा ली। विष्णु भगवान जी एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण करके आ गए और उन्होंने आकर कहा कि मैं बहुत भूखा हूँ। वह जो राख घोल कर पीने वाला साधू था उसने अपनी दो रोटियों में से एक रोटी उस वृद्ध ब्राह्मण (विष्णु भगवान) को दे दी। लेकिन वह बोला मुझे और रोटी दो क्योंकि मुझे भूख बहुत लगी है, उसने आधी रोटी और दे दी लेकिन वह फिर कहने लगा कि मुझे और रोटी दो। अतिथी को भरपेट भोजन खिलाना धार्मिक तौर पर आवश्यक होता है अन्यथा खिलाने वाले को दोष लग जाया करता है। यदि आप घर पर किसी मेहमान को बुला लो और वह घर से आधा भूखा चला जाए तो उसके पुण्य जल जाया करते हैं। वह साधू कहने लगा कि यदि मैं यह आधी रोटी भी तुम्हें दे दूँ तो फिर मैं क्या राख घोल कर पिऊँगा? वह बोला तथास्तु। इसके बाद वह दूसरे साधू के पास चला गया और उसे भी इसी प्रकार से भोजन की माँग की जब अन्तिम आधी रोटी बच गई थी तो जब वह भी उस ब्राह्मण ने माँग ली तो उसने कहा कि यह भी तुम्हें देकर फिर मैं क्या अंगार खाऊँगा? उसने

तथास्तु कहा और फिर मेरे पास आ गया और जब मुझसे उसने अन्तिम आधी रोटी माँगी तो मैंने कहा कि यह टुकड़ा भी तुम्हें देकर फिर मैं क्या मरूँगा? वह पूर्ववत् रूप में तथास्तु कह कर तुम्हारे पास आ गया। तुमने पहले तो उस ब्राह्मण का बहुत अधिक सम्मान किया उसके बाद तुमने एक रोटी उसे दे दी और एक अपने पास रख ली। जब ब्राह्मण ने और रोटी माँगी तो तुमने आधी और दे दी उसके बाद उसने जब आधी रोटी और माँगी तो तुमने वह आधी रोटी भी सहर्ष उसे दे दी और साथ ही विनती की कि देवता जी! मैं गाँव में आज तक कभी रोटी माँगने तो गया नहीं लेकिन आप अतिथी हैं, इसलिए मैं अपना उसूल तोड़कर आपके लिए और भोजन ला देता हूँ लेकिन इसके लिए आप कृप्या मुझे कुछ समय प्रदान करें। उन्होंने और भोजन तो क्या ग्रहण करना था, वह तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हो गए तथा साक्षात् विष्णु भगवान के रूप में प्रकट होकर तुम्हें दर्शन प्रदान कर दिए। फिर हम लोगों ने भी जाकर उनके चरण पकड़ लिए और विनती की कि हम लोगों का उद्धार कैसे होगा?

उन्होंने कहा देखा! यह हिन्दोस्तान का बादशाह बनेगा और उस समय अपने बादशाह बनने का कारण जानने के लिए इसके मन में ख्याल आएगा। उस समय उस राख खाने वाले को कहा कि पहले यह तुम्हारे पास आएगा उसके बाद अंगार खाने वाले को कहा कि फिर तुम्हारे पास आएगा और तब तक तुम अंगार ही खाते रहोगे। तत्पश्चात् उसने मुझे कहा कि आखिर में वह तुम्हारे पास इस सवाल का जवाब जानने के लिए आएगा और तब तक तुम जन्म लेते रहोगे और मरते रहोगे। जिस दिन तुम इसका जवाब उसे दे दोगे उसके बाद तुम तीनों को मुक्ति प्राप्त हो जाएगी। उसके बाद यह भी अपने राजभाग को भोग कर वापिस हमारे लोक में आ जाएगा। यह जो राज पण्डित की लड़की है यह वही लड़की है जो कि हम चारों के लिए भोजन लेकर आया करती थी।

विचार का तात्पर्य यह है कि भोजन दान करने का बेशुमार फल हुआ करता है, यहाँ तक कि भोजन दान करने वाला भारत का बादशाह बन गया। इसी प्रकार के वचन, सातवें गुरु महाराज एक बार संगत के बीच कर रहे हैं, उस समय एक गुरसिक्ख उठकर खड़ा हो गया और कहने लगा महाराज जी! जिन्हें आपने प्रचुर मात्रा में सामर्थ्य प्रदान की है वे तो दान कर सकते हैं, लेकिन हम लोगों जैसे गरीब लोग भी क्या कोई इस प्रकार का दान कर सकते हैं? क्योंकि हमें तो वैसे ही दो समय का भोजन प्राप्त नहीं हो पाता है और कई बार तो भूखे ही सो जाना पड़ता है। क्या हमारा भी कोई भला हो सकता है?

महाराज जी बोले, कितनी रोटी खाते हो? वह बोला,

जी चार!

महाराज जी बोले तीन खा लिया करो और एक रोटी का आटा निकाल कर रख दिया करो। जिस समय आटा काफी एकत्र हो जाए तो उस समय उसे उस स्थान पर जाकर दे आया करो जहाँ पर कि प्रतिदिन लंगर चलता है। प्रतिदिन लंगर क्यों? दरअसल बहुत सारी जगहें ऐसी हैं, जहाँ पर कि हम लोग दाना या आटा तो दे देते हैं लेकिन वे लोग उसे बेच देते हैं और फिर न जाने उसका क्या करते हैं? हो सकता है कि शायद उसे ठीक जगह पर ही प्रयोग किया जाता हो लेकिन फिर अन्न दान जितना महान फल शायद उसका न मिल पाता हो। सबसे श्रेष्ठ पुण्य कर्म है लंगर चलाना, चाहे घर में ही चलाओ।

पहले समय में गुरसिक्ख घरों में ही लंगर चलाया करते थे। इसके आगे महाराज जी कहने लगे कि हम तुम्हें एक कथा सुनाते हैं जो कि यहाँ पर कीरतपुर साहिब में घटित हुई है। आप कहने लगे कि यहाँ पर एक बहुत ही गरीब व्यक्ति रहा करता था, अब भी है। वह बैलों के पैरों के दाने इकट्ठे कर-करके घर लाता और उन्हें धोकर सुखा लेता और फिर उसका आटा बनाकर अपना और अपने परिवार का पेट पालता था। जहाँ पर उनकी झोंपड़ी थी, वहीं पर एक चिड़ियों का युगल रहता था, उन्होंने पेड़ पर अपना घोंसला डाला हुआ था और वह चिड़ियों का युगल किसी शाप के कारण इस योनि में आ गए थे। किसी गुरसिक्ख ने उन्हें शाप दे दिया था। चिड़ियों के उस युगल ने विचार की कि यह तो पहले ही दरिद्रता से ग्रस्त है इसलिए कोई न कोई उपाय करके इसकी दरिद्रता को हटाने का प्रयास करना चाहिए। दरिद्रता को हटाने का एक ही उपाय होता है और वह है - दान। दान के अतिरिक्त इसका अन्य कोई उपाय नहीं है। जितना अधिक कोई दान करता है उतनी ही दरिद्रता दूर होती है। चिड़ियों के उस युगल ने परस्पर सलाह की कि दो दाने तुम उठाया करो और दो मैं तथा हम लोग ये चार दाने प्रतिदिन लंगर में डाल आया करेंगे क्योंकि गुरु के लंगर में नाम स्मरण करने वाले साधू, महापुरुष, ब्रह्मज्ञानी लंगर ग्रहण करते हैं और ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों को किया हुआ दाना लाखों गुणा बढ़ जाता है -

खेतु पछाणै बीजै दानु ॥

अंग - 1411

अब यदि बुरे व्यक्ति को दान कर दो, वह पैसे लेकर शराब, माँस, अण्डा वगैरह खाएगा और इस प्रकार से वह दान के धन का अनर्थ कर देगा। अब यह दान लेने वाला तो दोषी बनेगा ही साथ में दान देने वाला भी दोषी बन जाएगा और इस प्रकार से दान लेने वाले के साथ-साथ दान देने वाला भी नर्को में जाने का पात्र बन जाएगा। उसका

कारण यह है कि उस दान देने वाले ने दान लेने वाले की पात्रता का कोई ध्यान नहीं किया। एक बार कबीर साहिब जी ब्रह्ममुहूर्त में चले जा रहे हैं, रास्ते में उसे एक व्यक्ति मिला वह कहने लगा, महाराज जी! मैं बहुत गरीब हूँ, मुझे कुछ दान चाहिए। भक्त कबीर जी बोले, प्रेमीपुरुष! इस समय तो मेरे पास कुछ भी नहीं है। वह बोला, भक्त जी! आप जो यह सूत (धागा) का गुच्छा लिए जा रहे हो, यही दे दो। भक्त जी ने उसे वह सूत का गुच्छा दे दिया। काफी समय बीत गया। एक दिन वही व्यक्ति भक्त कबीर जी के पास मिलने के लिए आया उसने सिर पर पीला वस्त्र बाँधा हुआ था और बड़ा ही बाँका लग रहा था। रेशमी पोशाक उसने धारण की हुई थी।

उसने भक्त जी को कहा महाराज जी! नमस्कार!

कबीर साहिब बोले, भद्रपुरुष! तुम कौन हो, मैंने तुम्हें पहचाना नहीं है?

वह बोला, महाराज जी! मैं वही हूँ जिसे आपने कुछ समय पहले सूत का गुच्छा दान किया था।

भक्त जी बोले, अच्छा! आज तो तुम बहुत बाँके लग रहे हो।

वह बोला, महाराज जी! आपने मुझे जो सूत का गुच्छा दिया था वह बहुत ही बरकत वाला था। मैंने उसका जाल बना लिया और सुबह ही जाल लेकर जंगल में चला जाता हूँ तथा नीचे चावलों के दाने बिखेर देता हूँ। पक्षी जाल में फँस जाते हैं और मैं उन्हें लाकर, खाने वाले माँस भक्षी लोगों को बेच देता हूँ। फलस्वरूप मुझे खूब धन प्राप्त हो जाता है। कबीर साहिब जी कहने लगे कि यह तो हमसे बहुत बुरा कार्य हो गया है क्योंकि हमने इस बात की विचार नहीं की कि जिस व्यक्ति को मैं दान कर रहा हूँ उसकी वृत्ति कैसी है? अतः महाराज जी फुरमान करते हैं कि 'खेतु पछाणै बीजे दानु।' दान करने से पहले पहचान करो हम दान किसे दे रहे हैं? यह दान लेखे में पड़ेगा या फिर अनर्थ हो जाएगा?

अतः चिड़ियों के उस युगल ने गुरु के लंगर में दाने डालने शुरू कर दिए। महाराज जी कहने लगे कि देखो! दान करने से माया आती है। चिड़ियों के द्वारा दाना लंगर में डालते रहने से इसका काम चलने लग पड़ा, ठेके लेने लग पड़ा और यह धीरे-धीरे अमीर हो गया, घर पक्का बना लिया। जब घर पक्का बना लिया तो उस चिड़ियों के युगल का घोंसला भी न रहा यानि कि वे भी वहाँ से दूर चले गए। अब इसकी वृत्ति विषय-विकारों की तरफ प्रवृत्त हो गई। दरअसल गरीब आदमी की रुचियाँ दबी रहती हैं क्योंकि धनाभाव के कारण शराब-कवाब लेने की उसकी हिम्मत नहीं होती है, जबकि

मन की रुचि तो उस तरफ की होती है। लेकिन जब उसके पास प्रचुर धन आ गया तो फिर उसका विकारी मन छलांगे मारने लग पड़ा यानि कि वह बहुत अधिक विकारों में प्रवृत्त हो गया।

उधर चिड़ियों का युगल उन्हें देखता रहा कि यह तो बहुत बुरा कार्य हो गया। यह व्यक्ति तो पूर्णतः बुरे कार्यों में लिप्त हो गया है। उन्होंने सलाह की कि अब क्या किया जाए। वे कहने लगे कि इन्हें पुनः गरीब बनाना पड़ेगा। इसके लिए अब दाने लंगर में से उठाकर इसके घर में डालना शुरू करते हैं। अब जिस घर में, गुरु घर का धन आने लग जाए यानि कि वह गुरु का या पूजा का धन खाने लग जाए तो फिर उसके ऊपर विघ्नों की वर्षा होने लग पड़ती है। गुरु का अन्न या पूजा का धन जो भी खाएगा तो उसकी बन्दगी या तप का प्रभाव पूर्णतः समाप्त हो जाएगा -

धरमसाला दीआँ रोटीआँ तिनं कंम करेनि,

वह भजन बन्दगी से पूर्णतः दूर हो जाएगा, आन्तरिक रुचि समाप्त हो जाएगी। बाहर से तो वह गुरसिक्ख प्रतीत होगा लेकिन आन्तरिक तौर पर वह पूर्णरूपेण नास्तिक हो जाएगा और उसे अनेकानेक विघ्न लगेँगे। फलस्वरूप वह बहुत दुखी होगा। इसीलिए भाई गुरदास जी ने एक कवित्त के अन्दर ऐसा फुरमान किया है कि जो लोग पूजा का धन खाते हैं वे घुन लगी हुई लकड़ी की भाँति हो जाते हैं। साथ ही आप यह चेतावनी भी देते हैं कि -

धारना - किते खंड दे भुलेखे जहिर खा लई ना।

जिउ मरिजादा हिंदूआ गउ मास अखाजु।

मुसलमाणा सुअरहु सउगंद विआजु।

सहुरा घरि जावाईअै पाणी मदराजु।

सहा न खाई चहड़ा माइआ मुहताजु।

जिउ मिठै मखी मरै तिसु होइ अकाजु।

तिउ धरमसाल दी झाक है विहु खंडू पाजु।

भाई गुरदास जी, वार 35/12

जिस प्रकार से कैप्सूल के अन्दर जहर को अन्दर निगलना हो, इसी प्रकार से पूजा का धन असर डाला करता है। यही कारण है कि गुरु महाराज जी ने इसे हृद से ज्यादा बुरा लिखा है। यदि कोई कहे कि ये साधू-सन्त भी तो लंगर में से भोजन ग्रहण करते हैं तो उनकी बात अलग है, क्योंकि उन्होंने तो अपनी जिन्दगियाँ गुरु पर न्यौछावर की हुई हैं। वे कोई तनख्वाह नहीं लेते, कोई अपना मकान नहीं बनाते, कोई जायदाद नहीं बनाते। यदि वे कोई चीज बनाते भी हैं तो फिर वे उसे बनाकर लोक कल्याणार्थ छोड़ जाते हैं। चाहे उनसे कोई अभी कह दे कि आप इसे छोड़ दो तो वे अभी छोड़ देंगे और अन्यत्र चले जाएँगे। वे अपनी पकड़ नहीं रखते हैं।

लेकिन दूसरी तरफ जो लोग पूजा के धन में से अपनी व्यक्तिगत जायदादें बनाते हैं, अपने बच्चों के लिए धन एकत्र करते हैं तो वह बहुत ही बुरा कार्य होता है।

गुरु जी ने फुरमान किया कि जब चार दाने प्रतिदिन गुरु के लंगर में से उस प्रेमीपुरुष के घर में जाने लग पड़े तो फिर उन्होंने उसके घर दोबारा गरीबी लाकर खड़ी कर दी। वह दोबारा हमारे पास आया, हमने सारी बात को देखा और उससे कहा कि देखो भद्रपुरुष! तुम्हारी किस्मत में यह धन पदार्थ कुछ नहीं था। यदि तुम्हारी किस्मत को चार चाँद लगे भी थे तो वह इन चिड़ियों की बदौलत ही लगे थे। अब तुम गुरु के लंगर की सेवा किया करो और यथाशक्ति उसमें कुछ योगदान किया करो पुनः अमीरी आ जाएगी।

अतः मैं विनती कर रहा था कि सेवा को करके देख लो इसका धनात्मक फल मिलता ही मिलता है लेकिन सेवा वही सफल होती है जिसे करने से गुरु का मन प्रसन्न हो जाए -

सतिगुरु की सेवा सफल है जे को करे चितु लाइ ॥

अंग - 644

फिर इसका प्रतिफल क्या होगा -

मनि चिंदिआ फलु पावणा हउमै विचहु जाइ ॥

अंग - 644

हमारे यहाँ संगत में आने वाला एक प्रेमीपुरुष था जो कि व्यवसाय के तौर पर चिकित्सक है लेकिन उसके घर में सन्तान नहीं थी, उसकी धर्मपत्नी वह सामने संगत में बैठी हुई है। यह महिला बीमार थी, लेकिन यह दम्पति बहुत अधिक सेवा किया करता थे। जब गुरु घर का निशान साहिब लगाने की बात आई तो इन्होंने कहा कि इसका खर्चा हम उठाएंगे उस समय, इसका कुल खर्चा 36000 रुपए आया जिसे दो लोगों ने मिलकर दिया। संगत ने गुरु चरणों में अरदास की कि हे सच्चे पातशाह जी! इन्होंने आपके घर का निशान कायम कर दिया है अब आप इनके घर का निशान कायम कर देना यानि कि इन्हें सन्तान प्रदान कर देना। आने वाले वर्ष में इनके घर लड़के ने जन्म ले लिया। यानि कि इनके मन की इच्छा को गुरु जी ने पूरा कर दिया। साधु संगत जी! सेवा कभी भी व्यर्थ नहीं जाया करती है। हमारे यहाँ कई प्रेमी पुरुष आते हैं, उनके रोग दूर हो जाते हैं, मनोकमानाएँ पूरी हो जाती हैं। गुरु कभी भी उधार नहीं रखता है, बल्कि वह तो बहुत ज्यादा करके वापिस करता है। दूसरी तरफ यह भी सत्य है कि बिना अच्छे भाग्य होने से गुरु-सेवा प्राप्त नहीं हो पाया करती है और व्यक्ति गुरु घर के पास में होता हुआ भी खाली रह जाता है और वह न तो शारीरिक तौर पर सेवा कर पाता है और न ही आर्थिक

तौर पर सेवा कर पाता है। दरअसल गुरु जी का फुरमान ही है कि जब तक जीव का भाग्योदय नहीं होता है तब तक सेवा की प्राप्ति नहीं हो पाया करती है -

बिनु भागा गुरु सेविआ न जाइ ॥

मनमुख भूले मुए बिललाइ ॥

अंग - 1065

मनमुख लोग दुखी हो होकर मरते हैं और जो गुरुमुखजन गुरु की सेवा करते हैं तो उन्हें फल की प्राप्ति हुआ करती है। जो गुरु की सेवा नहीं करते हैं -

जिना सतिगुरु पुरखु न सेविए सबदि न कीतो वीचारु ॥

ओइ माणस जूनि न आखीअनि पसू ढोर गावार ॥

अंग - 1418

वे तो एक प्रकार से पशु ही संसार में आए हुए हैं।

सेवा के द्वारा तो प्रत्येक मन वांछित वस्तु प्राप्त हो जाया करती है। ऐसा इतिहास में जिक्र आता है कि एक प्रेमीपुरुष जो कि लाहौर का रहने वाला है और गुरु घर का प्रेमी व भजन बन्दगी करने वाला है। वह व्यापार करता है लेकिन व्यापार में प्रतिवर्ष घाटा पड़ जाता है। इसके बावजूद भी वह अत्यन्त ईमानदार है। जो कुछ भी कमा पाता है उसमें से भी गुरु महाराज जी के लिए अपना दसवन्द निकालता है। वह दसवन्द लाकर गुरु चरणों में भेंट करता है।

अब गुरु के लिए कोई भी दसवन्द निकाल कर देख लो, वह लाभ में ही जाएगा। दसवन्द निकालने का एक फार्मूला होता है। किसानों के लिए यह है कि यदि उनकी उपज सौ बोरी हुई है तो वे एक बोरी गुरु के लिए निकाल दें उसे स्वयं न खाएँ क्योंकि वह तो गुरु का हिस्सा है। जो दुकान चलाता है सौ रुपए के बिक्री हुई है तो डेढ़ रुपया गुरु के नमित्त निकाल दो। कोई ट्रक वगैरह चलाता है तो वह सौ रुपए के पीछे एक रुपया निकालता रहे और उसे ऐसे गुरु घर में अर्पित कर दे जहाँ पर कि दान फलीभूत हो। इसलिए दान को निकालना, दरिद्र को निकालना हुआ करता है। गुरु जी रहितनामे में इस प्रकार से फुरमान करते हैं -

दस नख कर जो कार कमावै।

दसों नाखूनों के द्वारा जो ईमानदारी की कमाई करता है उसमें से सारे खर्च निकाल कर जो बचत होती है -

तिस ते गुर दशौध जो देई।

जो गुरु का दसवन्द उसमें से देगा -

सिंध सवस बहु जग महि लेही।

उसका बहुत यश बढ़ेगा। बचत हो गई। मैं सीधा-सीधा बतला देता हूँ खेती में 10 प्रतिशत की बचत होती है अधिक

नहीं होती है, इसलिए सौ बोरियों के पीछे एक बोरी निकाल दिया करो। व्यापार और दुकानदारी में पन्द्रह प्रतिशत की बचत होती है इसलिए वे सौ रुपए पर डेढ़ रुपया निकाल दिया करें। इस प्रकार से यह गुरु जी का हुक्म है इसे पालन करना चाहिए। अब मान लो कोई व्यापार करता है -

गोलक राखै नाहि जो छल का करे वपार।

जो धोखे का व्यापार करता है, असली कहकर नकली सामान बेचता है। कोई व्यक्ति स्वास्थ्य सुधार हेतु दवाई खरीदता है अब दवा विक्रेता उसे नकली दवाई दे देता है। उस दवाई का सेवन करने से बीमार व्यक्ति स्वस्थ नहीं हो पाता है और वह मर जाता है। उस व्यक्ति के मरने का पाप किसे लगेगा? जो नकली दवाई देगा उसकी हत्या का पाप उसी को तो लगेगा। कोई व्यापारी छल कपट करके चीजों में मिलावट कर देता है, खरीदार को भोला-भाला देखकर उससे अधिक मूल्य ले लेता है, इसे छल कपट का व्यापार कहते हैं। यह सब हमारे देश में ही चलता है विदेशों में यह नहीं है। अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी, कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि में यह बिल्कुल नहीं है। वहाँ पर तो बहुत साफ-सुथरा व्यापार है, वहाँ छल-कपट नहीं है। यथा -

गोलक राखै नाहि जो छल का करे वपार।

कहि गोबिंद सिंघ लाल जी भोगे नरक हजार।

वह हजार बार नर्क में जाएगा। वह बार-बार जन्म लेगा और बार-बार मरेगा तथा बार-बार नर्क की यातनाओं को भोगेगा। यथा -

दसबंध गुरु ना देवई, झूठ बोल जो खाइ।

कहि गोबिंद सिंघ लाल जी तिस का कछु न बसाइ।

जो गुरु का हिस्सा भी खा जाता है उसका कोई विश्वास नहीं होता है, और वह क्या करेगा?

गुरु दसवें महाराज जी को एक बार सिक्खों ने पूछा महाराज जी! यदि आप किसी सिक्ख पर प्रसन्न हो जाते हो तो फिर हमें कैसे पता चले कि आप उस पर बहुत प्रसन्न हो। गुरु जी बोले, प्रेमीजनो! हम उसकी समस्त सांसारिक जरूरतों को पूरा कर देते हैं उसे रिजक (जीविकोपार्जन का साधन) दे देते हैं राज भाग सम्भाल देते हैं, ऊँचे पद प्रदान कर देते हैं, उसके बच्चे बहुत आज्ञाकार हो जाएंगे, वे शराबी-कवाबी नहीं बनेंगे, सत्संग की तरफ वे उन्मुख होंगे यह सब हमारी प्रसन्नता की निशानियाँ हैं। एक गुरुसिक्ख और खड़ा हो गया वह कहने लगा महाराज जी! यदि आप इससे अधिक प्रसन्न हो जाओ फिर? महाराज जी बोले, देखो यदि व्यक्ति इन सभी वस्तुओं को प्राप्त करके, गुरु को याद रखता है, उसके हुक्मानुसार अपना जीवन यापन करता है तो उसे नाम

धन प्रदान कर देते हैं। अब गुरु का हुक्म क्या होता है?

गुर सतिगुर का जो सिखु अखाए

सु भलके उठि हरि नामु धिआवै ॥

उदमु करे भलके परभाती

इसनानु करे अंम्रित सरि नावै ॥

उपदेसि गुरु हरि हरि जपु जावै

सभि किलविख पाप दोख लहि जावै ॥

फिरि चडै दिवसु गुरबाणी गावै

बहदिआ उठदिआ हरि नामु धिआवै ॥ अंग - 305

गुरुसिक्ख को जीविकोपार्जन का अच्छा साधन मिल गया, घर में खूब धन-पदार्थ आ गया, पद-प्रतिष्ठा मिल गई, मान सम्मान मिल गया तो फिर गुरुसिक्ख को ब्रह्ममुहूर्त में उठना चाहिए, स्नानादि करके वाहिगुरु मन्त्र का जप करना चाहिए। इससे यह होगा कि सारे पापों का नाश होना शुरू हो जाएगा, फिर जो गुरुवाणी है, श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी अमृत सरोवर हैं, इसमें अपने मन का स्नान करवाओ। इसी स्नान का अमृतसर का स्नान कहते हैं। इसके बाद चलते फिरते वाहिगुरु का जप करता रहे, शुद्ध जीवन गुजारे गुरु जी के द्वारा बतलाए गए वचनों के अनुसार अपने जीवन को गुजारे। जो गुरुसिक्ख इस प्रकार से आगे बढ़ता है तो फिर हम उससे भी दस गुणा, बीस गुणा, पचास गुणा सुख प्रदान कर देते हैं। दूसरी तरफ कुछ प्रेमीजन ऐसे भी होते हैं जो कि समस्त पदार्थों को प्राप्त करके गुरु को भूल ही जाते हैं क्योंकि मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है कि -

दाति पिआरी विसरिआ दातारा ॥ अंग - 686

जैसे ही दात मिल गई तो देने वाले को भूल जाते हैं। गुरु जी इस प्रकार से फुरमान करते हैं -

धारना - मनमुखौं ने विसार दिता दाता,

दात नूं पिआरी जाण के।

पुत्र प्राप्ति के लिए लालसा लिए घूम रहा है और बहुत सारे उपाय कर रहा है। सन्तनजों की सेवा करता है, प्रार्थनाएं करता है, जो कुछ भी कोई कहता है वही करने के लिए तैयार हो जाता है, जब पुत्र प्राप्त हो गया तो फिर महात्मा कहते हैं कि अब तुम्हें कभी सत्संग में देखा ही नहीं?

कहता है जी अब समय ही नहीं मिलता है। कारण? कारण यह है कि उसी के अन्दर मन लिप्त हो गया गुरु से दूर हो गया। इस प्रकार से लोग धन पदार्थ व वस्तुओं को प्राप्त करके मालिक को भूल जाते हैं -

दस बसतु ले पाछै पावै ॥

एक बसतु कारनि बिखोटि गवावै ॥

एक भी न देइ दस भी हिरि लेइ ॥

तउ मूड़ा कहु कहा करेइ ॥
जिसु ठाकुर सिउ नाही चारा ॥
ता कउ कीजै सद नमसकारा ॥

अंग - 268

अतः यह भाई बुद्धू था जो कि गुरसिक्खी को समझने वाला गुरसिक्ख था। आज यह दसवन्द की रकम लेकर गुरु पाँचवें महाराज जी के चरणों में हाजिर हुआ और साथ ही इसने विनती की कि महाराज जी मैंने उधार रकम लेकर ईंटों का 'आवा' डाला है और मैंने सारी रकम भी अपनी सामर्थ्य से अधिक उधार ली है। आप कृपादृष्टि करना ताकि मुझे इसमें लाभ हो और मेरी ईंटें भी पक्की निकलें।

महाराज जी कहने लगे, भाई बुद्धू! हमने तो कोई भी बात किसी से छिपा कर नहीं रखी है बल्कि हमने तो सारी बातें स्पष्ट की हुई हैं। क्या तुम सुखमनी साहिब पढ़ते हो?

वह बोला, हाँ महाराज जी! मैं तो दो-दो पाठ भी कर लेता हूँ।

गुरु जी कहने लगे, जो हमने उसमें लिखा हुआ है क्या तुमने कभी उस पर विचार भी की है? अब उसे समझ में नहीं आ रहा है कि महाराज जी! किस तरफ इशारा कर रहे हैं।

कहने लगा, महाराज जी! इस समय याद नहीं आ रहा है कि आप जी किस शब्द की तरफ इशारा कर रहे हैं? कृप्या आप ही समझाने की कृप्या करें ताकि हमें पता चल जाए। उस समय गुरु जी ने इस प्रकार से फुरमान किया कि-

धारना - जे तैं चार पदारथ लैणे,
सेवा कर लै साधूआँ दी।

चारि पदारथ जे को मागै ॥

साध जना की सेवा लागै ॥

जे को आपुना दूखु मिटावै ॥

हरि हरि नामु रिदै सद गावै ॥ अंग - 266

गुरु जी कहने लगे, देखो भद्रपुरुष! बन्दगी करने वाले या नाम जपने वाले जो लोग होते हैं, चाहे वे गृहस्थी हैं या त्यागी हैं, यानि कि जो साधन सम्पन्न लोग होते हैं, उन्हें साधू कहते हैं। साधू न तो किसी भेष को धारण करने से बनता है और न ही किसी डेरे में रहने से बनता है बल्कि साधू तो वही बनता है जो कि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के उपदेशों के अनुसार अपने जीवन को ढालता है, नम्रता में रहता है, दया को धारण करता है, धैर्य और क्षमा को व शौच का धारणी है, मधुरभाषी है, सन्तोष उसके अन्दर है, ऐसा पुरुष ही साधू होता है और वही गुरु को प्यारा होता है क्योंकि गुरसिक्खों के अन्दर ये सभी गुण होते हैं। दरअस्तल साधू की

निशानी यही होती है कि -

इह नीसाणी साध की जिसु भेटत तरीअै ॥

अंग - 320

यदि साधू को मिलकर व्यक्ति का उद्धार ही नहीं होता है तो फिर वह साधू ही नहीं है। जिसका मन अभी विकारों की तरफ ही दौड़ता है, वह साधू नहीं है। यदि मन में ईर्ष्या है, निन्दा में रुचि है तो वह साधू नहीं है। साधू को मिलकर तो व्यक्ति का कल्याण अवश्यम्भावी है। साधू की तो निशानी ही यह है कि उसे मिलकर व्यक्ति तैरता ही है न कि डूबता है। दूसरी निशानी यह है कि -

आवै साहिबु चिति तेरिआ भगता डिठिआ ॥

अंग - 520

जिसे देखते ही मन में वाहगुरु-वाहगुरु होने लग पड़े तो समझ लो कि वह कोई ईश्वर से एकत्व प्राप्त आत्मा ही है क्योंकि इस प्रकार की आत्मा का ध्यान आते ही अपने आप नाम चल पड़ता है।

'चलता'



आवश्यक निवेदन

रिन्युवल का चन्दा भेजने के लिए मेंबरशिप नम्बर (सदस्यता संख्या) तथा रिन्युवल तारीख (पुनर्नवीनीकरण तिथि) का व्यौरा अवश्य दिया जाए तथा यह भी बतलाया जाए कि चन्दा, रिन्युवल के लिए है अथवा नई मेंबरशिप प्राप्त करने के लिए प्रेषित किया गया है।

यदि किसी प्रेमी पुरुष ने आत्म मार्ग मैगजीन के लिए चन्दा जमा करवाया हो और उसे मैगजीन न पहुँच पा रहा हो, तो उसे जमा करवाई गई रकम का रसीद नम्बर आदि लिखकर आत्म मार्ग कार्यालय से सम्पर्क करना चाहिए।

'आत्म मार्ग' एक धार्मिक मैगजीन है, इसके अन्तर्गत श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी की वाणी छपी हुई होती है, इसलिए समस्त पाठक बन्धुओं से अनुरोध है कि कृप्या इसका प्रयोग रही पेपर की भाँति न किया जाए। यदि आप पुराने मैगजीन को रखना नहीं चाहते हैं तो उन्हें हमारे किसी भी वितरण केन्द्र पर सहर्ष वापिस कर सकते हैं।

आत्म ज्ञान

सन्त वरियाम सिंह जी
सम्पादक - प्रो. गुरदेव सिंह

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक अप्रैल, पृष्ठ - 47)

श्री गुरु नानक देव जी जगत का उद्धार करते हुए एक सुदूरवर्ती स्थान पर चले जाते हैं, जहाँ पर कि एक प्रेमीपुरुष रहता है जिसका नाम झण्डाबाडी है और वह बहुत लम्बे समय से किसी रसिक आत्मा के मिलाप के लिए तड़प सहित प्रतीक्षा कर रहा है। उसने कभी भी गुरु महाराज जी के बारे में न तो सुना ही है और न ही कभी दर्शन किए हैं। बस वह तो प्रभु-चरणों में सदैव यह प्रार्थना करता रहता है कि हे प्रभु जी! कोई भी भेष धारण करके आओ और मेरा उद्धार करो।

अन्तर्यामी सतगुरु जी ने मरदाना को भेजकर उस प्रेमी को बुलाया फलस्वरूप वह लंगर (भोजन) लेकर गुरु चरणों में उपस्थित हो गया। महाराज जी के हाथ से प्रसाद लेकर उसके कपाट खुल गए और उसकी समाधि लग गई। गुरु जी ने उसे दर्शन देकर निहाल कर दिया। जब उसे होश आई तो वह गुरु जी के चरणों पर ढह पड़ा तथा कहने लगा, सच्चे पातशाह जी! जो कृपा आपने मेरे ऊपर की है वह कृपा मेरे मित्र इन्द्रसेन पर भी करने की कृपा करें। यह यहाँ के राजा सुधरसैन का भांजा है। हम दोनों इकट्ठे ही भक्ति व सत्संग विचारें करते रहे हैं। महाराज जी बोले, उसे भी बुला लाओ। थोड़ी देर बाद वह आ गया और उसने आकर नमस्कार की कहने लगा, सच्चे पातशाह जी! हम लोगों को खोज करते हुए बहुत समय हो चुका है, लेकिन कुछ भी पता हमें नहीं चल पा रहा है आप कृपा करो। महाराज जी कहने लगे, प्रेमीपुरुष! यदि तुमने कृपा करवानी है तो जो कुछ तुम्हारे पास है वह भेंट रख दो। उसके पास जो भी सामान था, उसने वह सब गुरु जी के चरणों में रख दिया। गुरु जी कहने लगे, अभी तो तुम्हारे पास बहुत कुछ बाकी है, वह भी भेंट कर दो। वह कहने लगा, महाराज जी! मेरे पास तो अब इस शरीर पर धारण किए हुए वस्त्र ही हैं। गुरु जी बोले, वह भी भेंट कर दो लेकिन कपड़ों को उतारने की जरूरत नहीं है, बस संकल्प करके भेंट कर दो। गुरु जी बोले, बन्धु! अभी भी तुम्हारे पास बहुत कुछ पड़ा है। कहने लगा, जी

यह मेरा शरीर है। गुरु जी बोले, यह शरीर तथा और भी बहुत सारी चीजें हैं, बहुत प्रकार के ख्याल हैं, विद्या है, ख्याल करने वाली शक्ति है, निर्णय करने वाली बुद्धि है, महसूस करने वाली चेतन शक्ति है, यह सब कुछ भी भेंट कर दो। वह बहुत विद्वान था, उसने सब कुछ सोचकर भेंट कर दिया और सामने चौंकड़ी लगा कर बैठ गया। महाराज जी बोले, अभी तेरे पास और कुछ भी है तुम्हारी 'में' तुम्हारे पास है वह भी भेंट कर दो। उसने वह भी भेंट कर दी अब शेष क्या रह गया? अब तो वह पूरी तरह से खाली हो गया। न कुछ बोल सकता है, न कुछ सोच सकता है, न हिल सकता है। उसे वह अपने निजत्व में लीन हो गया और परमानन्द में समाधि लगाकर बैठ गया। दरअसल मैं ही सारे झगड़े का मूल है, इसी के कारण से हम गुरु से बिछुड़े हुए हैं और मैं ही गुरु को सौंप दी, समाधि लग गई और बहुत देर तक इसी प्रकार परमानन्द में लीन बैठा रहा। फिर गुरु जी ने उसे सावधान किया और आपने कहा इन्द्रसैन सुनो! जो पाँच तत्व हैं, 25 प्रकृतियों से बनी ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, पाँच प्राण - प्राण, अपान, समान, उदान, बियान, ख्याल करने वाला मन, निर्णय करने वाली बुद्धि महसूस करने वाला चित्त तथा यह मैं भाव सबका मूल (जड़) है। तीन गुण - रजो, तमो व सतो, तीन अवस्थाएँ - जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्त, पाँच विषय - शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध से परे आत्म स्वरूप हैं, जिसे कि यह बुद्धि नहीं जान सकती है। बुद्धि के पास आत्म स्वरूप को जानने की शक्ति ही नहीं है क्योंकि वह जड़ है इसलिए प्रेमीजन! यह भली प्रकार से जान लो कि जो केवल अनुभव मात्र बचा था वही तुम्हारा आत्म स्वरूप है। इसके अन्दर परमानन्द है लेकिन जब तक हम अपनी में को बचा कर रखते हैं तब तक बात नहीं बनती है क्योंकि बीच में एक पर्दा है। इसी हउमै के पर्दे के कारण संसार वाहिगुरु जी से बिछुड़ा हुआ है।

हउ हउ भीति भइओ है बीचो

(शेष पृष्ठ 39 पर)

सन्त बाबा लखबीर सिंह जी द्वारा आस्ट्रेलिया में गुरुमति समागम के दृश्य

गुरुद्वारा साहिब ब्रिस्बेन



गुरुद्वारा साहिब (मैलबौर्न)



गुरुद्वारा साहिब (सिडनी)





नगर बहिराम (नवां शहर)



बस्ती शेरपुर (नजदीक माछीवाड़ा साहिब)



ਗੁਰੂ ਗੋਬਿੰਦ ਸਿੰਹ ਵਿਦਿਆ ਮੰਦਿਰ ਸੀ. ਸੈ. ਸਕੂਲ ਕਾ ਸਥਾਪਨਾ ਦਿਵਸ ਸਮਾਗਮ



सन्त बाबा हरपाल सिंह जी द्वारा पृथक-पृथक क्षेत्रों में आयोजित गुरुमति समागमों के अनुपम दृश्य

ऐतिहासिक गुरुद्वारा इमली साहिब

श्री गुरु नानक देव जी सन् 1568

में अपनी द्वितीय उदासी के दौरान दक्षिण से वापिस लौटते समय इन्दौर आए। खान नदी के तट पर इमली के वृक्ष के नीचे उन्होंने अपना आसन लगाया तथा शब्द की महत्वपूर्ण व्याख्या की। भाई मरदाना जी की रवाब के माध्यम से गुरु जी के अमृतमयी वचनों को सुनकर इन्दौर की संगत मन्त्रमुग्ध हो गई।

जब संगत ने बाबा जी के चरण स्पर्श किए तो उन्होंने महसूस किया कि

गुरु जी तो विशुद्ध परमात्मा का नूर हैं। इस दिव्य नूर का जिक्र कवि महीपति ने अपनी पुस्तक 'लीला अमृत' में भी किया है। गुरु जी उज्जैन से ओंकारेश्वर होते हुए इन्दौर में तशरीफ लाए। पहले इस स्थान की सेवा-सम्भाल उदासी मत के अनुयाई और उसके बाद रमड़या सिंह ने सम्भाली इसके उपरान्त होलकर स्टेट की रक्षार्थ जो सिक्ख सेनानी पंजाब से इस तरफ आए उन्होंने इसकी सेवा का दायित्व सम्भाला।

इस स्थान पर श्री गुरु सिंह सभा इन्दौर द्वारा विशाल तथा सुन्दर गुरुद्वारा साहिब का निर्माण किया गया है। गुरुद्वारा साहिब के साथ ही गुरु रामदास सराय बनाई गई है जिसमें बाहर से आए श्रद्धालुजनों के आवास हेतु सुन्दर व व्यवस्थित कमरों का निर्माण किया गया है। गुरु का लंगर निरन्तर चलता रहता है। श्री गुरु सिंह सभा इन्दौर द्वारा सन् 1942-43 में यह गुरुद्वारा पंजीकृत किया गया। गुरुद्वारा साहिब शहर के मध्य भाग में होने के कारण यहाँ समस्त धर्मों के अनुयाई आत्मिक ज्ञान, शान्ति व आनन्द की प्राप्ति हेतु प्रायः आते रहते हैं तथा स्वयं को भाग्यशाली समझते हैं।



इन्दौर
(मध्य प्रदेश)



ऐतिहासिक गुरुद्वारा ओंकारेश्वर साहिब



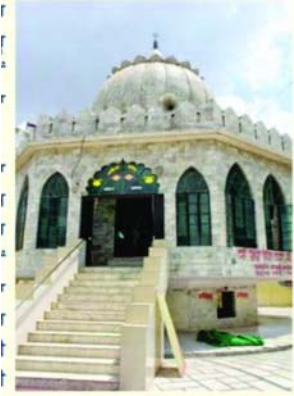
श्री गुरु नानक देव जी महाराज अपनी दूसरी उदासी के दौरान ओंकारेश्वर आए। यहाँ पर उस समय जो पण्डित लो ज्ञान के अहंकार में चूर थे उन्हें राग रामकली में ओंकार की उपमा बतलाई। (रामकली महला 1 दखणी ओअंकार - अंग - 830) ' सुणि पाडे किआ लिखहु जंजाला ।। लिखु राम नाम गुरुमुखि गोपाला ।।' गुरु जी के अनुसार शिक्षा की सार्थकता, मनुष्य को एकंकार ब्रह्म के साथ जोड़ना ही ज्ञानवान पुरुषों का परम कर्तव्य है।

सन् 1957 में ज्ञानी सन्त सिंह जी मसकीन को पहली बार गुरुद्वारा तोप खाना साहिब (इन्दौर) में इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त हुई। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप सन् 1961 में ओंकारेश्वर में गुरुद्वारा साहिब की इमारत का निर्माण कार्य आरम्भ हुआ तथा 1964 में श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी का प्रकाश इस इमारत में हुआ।

इन्दौर, बड़वाह, सनावद, खण्डवा, झिरनिया, खरगोन की संगत ने महत्वपूर्ण अपना योगदान किया। ओंकारेश्वर, इन्दौर से 80 कि.मी. की दूरी पर नर्मदा नदी के तट पर स्थित है। हिन्दू मत के अनुसार ओंकारेश्वर को हिन्दू धर्म के पूजनीय तीर्थों में से एक माना गया है। श्री गुरु सिंह सभा इन्दौर की पावन देख रेख में यहाँ पर प्रतिवर्ष अप्रैल के प्रथम सप्ताह में दिनांक 1 से 3 तक गुरुमति समागम आयोजित किए जाते हैं, जिसमें गुरुमति के प्रवाह निरन्तर चलते रहते हैं। इस समागम में ब्रह्मलीन पन्थ रत्न ज्ञानी सन्त सिंह मसकीन जी की प्रेरणानुसार सिक्ख कौम के उच्च कोटि के विद्वान, रागी जत्थे, कथावाचक, सन्त महापुरुष,

कविगण अपनी हाजिरी लगवाते हैं।

ऐतिहासिक गुरुद्वारा बेटमा साहिब



तवारीख गुरु खालसा में इस बात का उल्लेख है कि श्री गुरु नानक देव जी महाराज आबू पर्वत से उतर कर 'सतिनाम' का बीज बोते हुए धारा नगरी पहुँचे। पुरातन कथाओं के अनुसार धारा नगरी राजा गोपीचन्द की नगरी के नाम से जानी जाती थी। इस इलाके में भीलों का बहुत आतंक था। गुरु जी ने उन्हें शान्ति तथा भाईचारे का उपदेश दिया। दन्तकथाओं के अनुसार गुरु जी की कृपा से यहाँ का पानी पीने योग्य हो गया। मीठे जल की बावड़ी यहाँ पर आज भी सुशोभित है।

यह स्थान गुरु नानक चरण पादुका के नाम से 1968 में श्री गु. सिंह सभा, इन्दौर के अन्तर्गत पंजीकृत है। सन् 1968 में इस स्थान की सेवा सम्भाल गुरुद्वारा सिंह सभा, इन्दौर ने अपने हाथों में ली। रविवार, पूर्णमासी अमावस्या तथा श्री गुरु नानक देव महाराज जी का ब्रह्मलीन गुरु पर्व बहुत ही श्रद्धा व उल्लासपूर्वक मनाए जाते हैं तथा विशेष दीवान सजाए जाते हैं।

इस स्थान पर सुन्दर सरोवर तथा गुरु चरण पादुका साहिब की नवीन इमारत का निर्माण श्री गुरु सिंह सभा इन्दौर तथा सन्त बाबा घोला सिंह जी सरहाली (पंजाब) वालों ने कार सेवा के माध्यम से किया है। ऐतिहासिक गुरुद्वारा बावड़ी साहिब के नवीन दरबार साहिब की कार सेवा चल रही है। इस स्थान पर बारहों महीने व चौबीसों घंटे गुरु के लंगर निरन्तर चलते रहते हैं।

भाई सरबजीत सिंह इन्दौर साहिब वालों के माध्यम से सन्त बाबा हरपाल सिंह जी को जत्थे समेत दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

इन्दौर (मध्य प्रदेश)



गाँव लोहगढ़ फिडे (रूप नगर)



सन्त बेला (श्री आनंदपुर साहिब)



लाछड़ू (पटियाला)



साहिबजादा अजीत सिंह नगर (मोहाली)



श्री रछपाल मल्होत्रा डायरेक्टर करिड (चण्डीगढ़) की अगुवाई में आयोजित समागम के दौरान डा. मनमोहन सिंह भूतपूर्व प्रधानमन्त्री तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती गुरशरण कौर को सन्त बाबा हरपाल सिंह जी रतवाड़ा साहिब वाले सम्मानित करते हुए



गुरुद्वारा रतवाड़ा साहिब कार सेवा दृश्य



भाई जसविन्दर सिंह घोला रतवाड़ा साहिब जत्थे समेत 'उत्तर-पूरब भारत आत्म मार्ग प्रचार फेरी' के अधीन गुरुद्वारा बाल लीला पटना साहिब (बिहार) गुरुद्वारा सिंह सभा गरचा (पश्चिमी बंगाल) गुरुद्वारा चन्दन कुना (पश्चिमी बंगाल), गुरुद्वारा सिंह सिलीगुड़ी (पश्चिमी बंगाल), गुरुद्वारा सिंह सभा बीरपाड़ा (पश्चिमी बंगाल), गुरुद्वारा धोबड़ी साहिब नौवीं पातशाही (आसाम) में गुरमति समागमों में हाजिरी लगवाते हुए। अनेकों प्रेमीजनों ने इन स्थानों पर आत्म मार्ग मैगजीन की सदस्यता प्राप्त की।



(पृष्ठ 30 का शेष)

सुनत देसि निकटाइओ ॥

भाँभीरी के पात परदो बिनु पेखे दूराइओ ॥

अंग - 624

हउमै होने के कारण अनुभव नीचा हो गया जिसकी वजह से असली की जह पर नकली दिखाई देने लग पड़ा। समझने के लिए उदाहरण है कि जैसे एक दरिया बह रहा है, जब वह उछला तो उसका पानी गड्ढों, तालाबों व नालों में चला गया। उसके बाद दरिया अपनी पूर्ववत जगह पर नीचे चला गया लेकिन इन सब जल श्रोतों का सम्बन्ध अपने मूल (समुद्र) से टूट गया और इनकी एक पृथक् हस्ती कायम हो गई जैसे कि झील, तालाब, ताल आदि। असली बात यह है कि पानी तो एक ही था लेकिन बहते जल से सम्बन्ध टूट गया फलस्वरूप एक निश्चित मात्रा में पानी खड़ा होने से उसके ऊपर मौसम का प्रभाव पड़ना शुरू हो गया। धूप, मिट्टी और पत्ते गिरने से पानी बदबूदार हो गया और मच्छर तथा कीड़े आदि जीव उसमें उत्पन्न हो गए। अब विचार करने वाली बात यह है कि दरिया का पानी तो अत्यन्त निर्मल था लेकिन जब वह अपने मूल श्रोत से टूट गया तो वह कितना गन्दा हो गया। उस जल का यह हाल उस समुद्र से टूट जाने के कारण हुआ। इस सम्बन्ध में डा. भाई वीर सिंह जी एक कोयले का उदाहरण देकर इस प्रकार से ब्यान करते हैं -

साबण ला ला धोता कोला

दुध दही विच पाइआ।

रंग चाइ खुंबण वी दिती

रंग ना एस वटाइआ।

विछड़ के कालख सी आई।

बिन मिलिआँ नहीं लहिंदी।

अंग अंग दे ला के देखो चड़दा रुप सवाइआ।

यह चार पंक्तियों की रुबाई है लेकिन इसके अन्दर बहुत बड़ी अध्यात्मिक शिक्षा निहित है। डा. साहिब कहते हैं कि बहुत कोशिश की गई कि कोयला अपने असली रूप में आ जाए क्योंकि वह अपने वास्तविक श्रोत से अलग होने के कारण काला हो गया था। अब उसकी कालिख तब तक दूर नहीं हो पाती है, जब तक कि उसे अपने प्यारे का मिलाप नहीं हो जाता है। कोयले को आग में डालकर देखो कि वह कैसे लाल सुर्ख हो जाता है। कारण? कारण यह है कि वह अपने मूल (आग) से जुड़ गया। परमेश्वर से बिछुड़ कर हमारा भी यही हाल हो गया है जो हमारे अन्दर मैं, मेरी व विषयों के विकार रूप कीट पड़ गए हैं, वे हमें परमेश्वर के साथ मिलने ही नहीं देते हैं। परम सुख देने वाली जो आत्मा थी, उसे जीव की उपाधि देकर हमने जीव रूप बना दिया।

यह जीव बनकर नीचे की तरफ चला गया। पहले इसे अज्ञान पैदा हुआ और गाढ़ी नींद जैसा आनन्द आ गया। उसके बाद हिलजुल पैदा हुई और अलग हस्ती की समझ आई। इसके बाद सोचने व ख्याल करने की शक्ति आ गई, फिर प्राण शक्ति आ गई और फिर शरीर बन गया। अब पाँच पर्दे पड़ गए और इसकी अवस्था नीचे की तरफ खिसक गई। पहला पर्दा आनन्द का पड़ गया, दूसरा अक्ल का पड़ गया, तीसरा मन का पड़ गया। इस प्रकार से अनुमान लगा लो कि एक बहुत बड़ा एक हजार वाट का बल्ब प्रकाश दे रहा है, लेकिन उसके ऊपर किसी ने पीले रंग का कागज लपेट दिया अब रोशनी पीली पड़ गई। दूसरा व्यक्ति आया उसने उसके ऊपर नीला कागज लपेट दिया। अब रोशनी और मद्धम पड़ गई। तीसरा व्यक्ति आया उसने काले रंग का कागज चढ़ा दिया। अब केवल अन्धेरे में पता चलता है कि कुछ मामूली सी रोशनी है। चौथा व्यक्ति आया उसने गाढ़ी तारकोल का ही पेंट कर दिया। उसके बाद पाँचवां व्यक्ति आया और उसने उसके ऊपर कड़ाहा ही उल्टा करके रख दिया। अब अन्दर तो रोशनी है लेकिन ऊपर से पर्दे पड़ जाने के कारण प्रकाश अलोप हो गया। यही हाल हमारा हुआ है, हमारे अन्दर तो आत्मा है लेकिन ऊपर पर्दा पड़ता चला गया, बुद्धि बदल गई और वह स्वयं को साढ़े तीन हाथ की देह ही समझने लग पड़ा तथा इसका नाम जो रखा हुआ था स्वयं को वही समझ कर इसने जीने शुरू कर दिया। हमारे पास नई सुरति आ गई और जो असली सुरति थी वह खो गई। इस सुरति ने यह किया कि यह इस तरह से सोचने लग पड़ा कि मैं फलां सिंह हूँ, मेरे पास इतनी जमीन है, मेरे पास इतने ट्रैक्टर हैं, कम्बाइनें हैं, इतनी कोठियाँ हैं, मेरे बच्चे अच्छे अफसर हैं, मेरे पुत्र-पुत्रियाँ हैं, मेरे रिश्तेदार, मेरी ऊँची जाति, मेरा देश आदि। कहने का तात्पर्य यह है कि चहुँओर मैं ही मैं फैल गई। यही कारण है कि गुरु महाराज जी समझाते हैं कि ऐ भोले जीव! यह तुम किस दिशा में चले जा रहे हो? यह जो तुम्हारी सुरति है यह तो गाढ़ी नींद है। तुम तो सोए हुए ही सपने ले रहे हो। तुम्हें जाग क्यों नहीं आती है? पाँच चोर तुम्हारा घर लूट रहे हैं -

जिउ सुपनै निसि भुलीअै जब लगि निदा होइ ॥

इउ सरपनि कै वसि जीअड़ा अंतरि हउमै दोइ ॥

अंग - 63

इसु देही अंदरि पंच चोर वसहि

कामु क्रोधु लोभु मोहु अहंकारा ॥

अंमिनु लूटहि मनमुख नही बूझहि

कोइ न सुणै पूकारा ॥

अंग - 600



सासि सासि सिमरहु गोबिंद

सन्त बाबा हरपाल सिंह जी

विचि दुनीआ सेव कमाईअै ॥
ता दरगह बैसणु पाईअै ॥
कहु नानक बाह लुडाईअै ॥ अंग - 26

मनु बेचै सतिगुर कै पासि ॥
तिसु सेवक के कारज रासि ॥
सेवा करत होइ निहकामी ॥
तिस कउ होत परापति सुआमी ॥ अंग - 286

गुर कै ग्रिहि सेवकु जो रहै ॥
गुर की आगिआ मन महि सहै ॥
आपस कउ करि कछु न जनावै ॥
हरि हरि नामु रिदै सद धिआवै ॥
मनु बेचै सतिगुर कै पासि ॥
तिसु सेवक के कारज रासि ॥
सेवा करत होइ निहकामी ॥
तिस कउ होत परापति सुआमी ॥ अंग - 286

चारि पदारथ जे को मागै ॥
साध जना की सेवा लागै ॥
जे को आपुना दखु मिटावै ॥
हरि हरि नामु रिदै सद गावै ॥
जे को आपुनी सोभा लोरै ॥
साधसंगि इह हउमै छोरै ॥
जे को जनम मरण ते डरै ॥
साध जना की सरनी परै ॥
जिसु जन कउ प्रभ दरस पिआसा ॥
नानक ता कै बलि बलि जासा ॥ अंग - 266

जिसु वखर कउ लैनि तू आइआ ॥
राम नामु संतन घरि पाइआ ॥
तजि अभिमानु लेहु मन मोलि ॥
राम नामु हिरदै महि तोलि ॥
लादि खेप संतह संगि चालु ॥
अवर तिआगि बिखिआ जंजाल ॥ अंग - 283

गुर प्रसादि बिखिआ परहरै ॥
मन की बासना मन ते टरै ॥
इंद्री जित पंच दोख ते रहत ॥
नानक कोटि मधे को औसा अपरस ॥ अंग - 274

परम सम्माननीया गुरु प्यार साधु संगत जी! आओ!
ख्यालों को बाहर जाने से रोकें, चित्त को एकाग्र करो तथा
जिह्वा की पवित्रका के लिए सारे ही उच्चारण करो जी -
सतिनाम श्री वाहिगुरू।

श्री आनंदपुर साहिब का इलाका कितना सतोगुणी
इलाका है क्योंकि यहाँ पर श्री आनंदपुर साहिब को ओरा
(aura) है, इधर नंगल का इलाका है और इस सारे ही
इलाके में शान्ति है, सुख है क्योंकि यहाँ पर गुरू जी की
कृपा है।

आज के समय में चहुँओर कल्युग का ही साम्रज्य
दिखाई पड़ रहा है लेकिन इस इलाके में सत्युग ही प्रतीत होता
है ऐसा इसलिए है क्योंकि यहाँ गुरू दशमेश जी ने डेरे लगाए।
यह मौजोवाल है जबकि वह धरती मौखोवाल की थी, जहाँ
पर कि धन्य गुरू तेग बहादुर महाराज जी ने 19 जून सन्
1665 ई. को डेरे लगाए तथा बाबा गुरदित्ता रंधावा जी से
इस रमणीक स्थान का शिलान्यास करवाया। कहिलूर का
राजा रूप चन्द परलोक गमन कर जाता है। उस समय गुरू
तेग बहादर जी रानी को सांत्वना देने जाते हैं। रानी चंपा डूंगर
बहुत ही प्यार वाली है, वह गुरू जी को विनती करती है
कि महाराज जी! आप यहाँ पर आकर डेरे लगाओ। सतगुरू
जी उनकी प्यार भरी विनती को स्वीकार करके, 19 जून
सन् 1665 ई. को यहाँ पर माखोवाल की धरती खरीदते हैं
और इसका नाम अपनी माता जी के नाम पर नानकी चक
रख देते हैं। श्री गुरू तेग बहादर जी के सपुत्र श्री गोबिंद राय
जी जब पटना साहिब से यहाँ पर आते हैं तो आपने श्री आनंद
साहिब अपने मुखारविन्द से उच्चारण किया और गुरू जी
इतने आनंद में आए कि इस स्थान का नाम ही आनंदपुर
साहिब रख दिया -

आनंदु आनंदु सभु को कहै आनंदु गुरु ते जाणिआ ॥

अंग - 917

इस धरती पर कितने बड़े-बड़े व अद्वितीय कारनामे
हुए। श्री गुरू तेग बहादर महाराज जी के पास पाँच सौ पण्डित
भाई मती दास, भाई सती दास, भाई दयाला जी, एक
डैप्यूटेशन लेकर जत्थे के रूप में श्री आनंदपुर साहिब पहुँचते
हैं। गुरू पातशाह जी उनकी विनती को स्वीकार करते हैं,

फलस्वरूप दिल्ली में कितनी बड़ी शहादत होती है -

तिलक जंजू राखा प्रभ ताका॥

कीनो बड़ी कलै महि साका॥

आपने अपना शीश दे दिया -

धरम हेत साका जिनि कीआ॥

सीस दीआ पर सिररु न दीआ॥ बचित्र नाटक 'चौं

ऐसी मिसाल इस धरती पर कायम हुई कि गोबिंद राय जी नौ साल की उम्र में अपने पिता जी को शहादत देने के लिए दिल्ली भेजते हैं और आप बारह वर्ष की आयु में गुरुता गद्दी पर विराजमान होते हैं। उस समय से श्री गुरु गोबिंद महाराज जी ने जो दिशा तत्कालीन समाज को दी उसकी बदायलत कितनी बड़ी क्रान्ति देश व समाज में उत्पन्न हो गई। जो जोर जुल्म व अत्याचार का राज्य चल रहा था, उस पर अंकुश लगा। यह बात नहीं थी कि मुसलमान बुरे थे या बुरे हैं। ऐसा बिल्कुल भी नहीं था। इस प्रकार के बहुत सारे भ्रम इतिहास के माध्यम से उत्पन्न किए गए हैं, जिन्हें कि महापुरुषों ने अपनी कलम के माध्यम से बखूबी दूर करने के प्रयास किए हैं। यह सब राजनीति के फलस्वरूप होता है। राजनीति के चार प्रमुख अंग जिन्हें कि चाणक्य ऋषि ने वर्णित किया है, साम, दाम, दण्ड, भेद हैं। इन्हीं के माध्यम से अपना हित साधने की कोशिश की जाती है। इसीलिए राजनीति में हमेशा के लिए न तो कोई दुश्मन होता है और न ही कोई हमशा के लिए मित्र होता है।

भाई मरदाना जी के माध्यम से वाणी आई वे मुसलमान थे। यहाँ पर जब श्री आनंदपुर साहिब का किला खाली किया गया तो भाई विचित्र सिंह जी, जो कि बहुत बुरी तरह से जख्मी हालत में थे, कहाँ गए? वे निहंग कोटला जो कि मुसलमान था, के घर या किले में जाते हैं। नबी खाँ और गनी खाँ माछीवाड़े में गुरु जी को 'उच्च का पीर' बना कर ले जाते हैं, वे मुसलमान ही तो थे। इसलिए सारी कौम को दोष नहीं दिया जा सकता है। सभी अच्छे नहीं होते और सभी बुरे भी नहीं होते हैं।

महापुरुषों ने 'सुरति सबदि मार्ग' नामक पुस्तक जो कि सात दीवानों का संग्रह है, में सारे सिद्धान्तों को खोल-खोल कर लिखा है कि गुरु महाराज जी का सारा सिद्धान्त किस प्रकार से प्यार के ही चहुँओर घूमता है -

साचु कहौं सुन लेहु सभै

जिनि प्रेम कीओ तिन ही प्रभ पाइओ।

प्यार के द्वारा ही परमात्मा की प्राप्ति है। इस धरती पर ऐसा सिद्धान्त गुरु जी ने प्रस्तुत किया। 'सुरति सबदि मार्ग' पुस्तक जो है इसमें माता जीतो जी, श्री गुरु गोबिंद सिंह जी

को विनती करते हैं कि महाराज जी! मन को किस प्रकार से स्थिर किया जा सकता है? श्री गुरु दशमेश जी ब्रह्ममुहूर्त में अपने सिंहासन पर विराजमान हैं, आप फुरमान करते हैं कि इसे स्थिर करने के दो प्रमुख मार्ग हैं, एक है - कष्टयोग और दूसरा है - भक्तियोग। योग नाम जुड़ने का है। आपके मन में इसे जानने की जिज्ञासा है इसलिए हम इसे बताने का प्रयत्न करते हैं -

प्रथमे कश्ट योग वखिआना।

अश्ट अंग सुन ताँके काना।

हम तुम्हें बताते हैं कि इसके आठ अंग हैं, आठ अंगों में पहला है - सम जिसे कि यम भी कहते हैं।

यम के पुनः दस अंग हैं। इसके लिए फिर गुणों को धारण किया जाता है क्योंकि -

विणु गुण कीते भगति न होइ ॥

अंग - 4

भक्ति के मार्ग में अवगुणों का त्याग करके गुणों को धारण करना पड़ता है। तन व मन दोनों तरीके से अवगुणों का त्याग करना चाहिए दरअसल सारा सम्बन्ध ही मन का है-

ममा मन सिउ काजु है मन साथे सिधि होइ ॥

मन ही मन सिउ कहै कबीरा

मन सा मिलिआ न कोइ ॥

अंग - 342

मन का सम्बन्ध ही प्रत्येक बात के साथ है और आपने यह बात पूछ कर बहुत अच्छा किया है। उत्तम जिज्ञासु जान कर महाराज जी ने आन्तरिक मार्ग को खोलकर बतलाया जो कि वास्तव में सुरति सबद मार्ग है। इसमें अहिंसा धारण करनी है, दया, सन्तोष व क्षमा को धारण करना है। एक तन की चोरी है, एक मन की चोरी है। मन के तौर पर किसी का बुरा नहीं करना है। मनसा वाचा सर्मणा शुभ गुण धारण करने हैं और चौथा जो स्तम्भ है वह है -

चौथे ब्रहम चरज सुख सार।

कीते काम आठ परकार।

जिनि रचि रचिआ पुरखि विधातै नाले हउमै पाई ॥

जनम मरणु उस ही कउ है रे एहा आवै जाई ॥

अंग - 999

यदि अन्दर नाम है तो यह भी साथ में -

हे कामं नरक बिस्रामं बहु जोनी भ्रमावणह ॥

अंग - 1358

यह तो असंख्य योनियों में घुमा कर रख देता है, इसलिए इस पर नियन्त्रण रखना नाम जपने वालों के लिए अत्यावश्यक है। जैसे कि हम लोगों ने पिछले दीवान में विनती

की थी कि जो नेत्र गुरु के दर्शनों के बिना और कुछ देखते हैं, जहाँ से कि वासनाएँ जागृत होती हैं, वह बहुत ही घातक सिद्ध होती हैं। बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, तपस्वी आदि हजारों वर्षों तक तपस्या करने के बाद भी नीचे गिर गए उनका चरित्र पतन हो गया। शारीरिक मृत्यु तो एक बार आती है लेकिन जिस इन्सान का चरित्र गिर गया, उसके पल्ले तो फिर कुछ भी नहीं रहता है। इसे जीतने के लिए आठ नियम बतलाए गए हैं, इनके द्वारा मन पर नियन्त्रण रखो। वैसे तो मनुष्य को इस प्रकार से व्यवहार करना चाहिए -

देखि पराईआँ चंगीआँ मावाँ धीआँ भैणाँ जाणे।

लेकिन यह तो उल्टी बातें करता है।

महापुरुषों ने 'सुरति सबदि मार्ग' पुस्तक में इस सब कुछ का सविस्तार वर्णन व उल्लेख किया है। दरअस्त महापुरुष प्रत्येक प्रकार से पूर्ण थे।

नाम जपने से सारे दुख दूर होते हैं और सेवा करने से सम्मान प्राप्त होता है। श्री गुरु गोविंद सिंह महाराज जी का यह सिद्धान्त है -

राज महि राजु जोग महि जोगी ॥

तप महि तपीसरु ग्रिहसत महि भोगी ॥

धिआइ धिआइ भगतह सुखु पाइआ ॥

नानक तिसु पुरख का किनै अंतु न पाइआ ॥

अंग - 284

श्री गुरु गोविंद सिंह महाराज जी कथन करते हैं कि मेरे गुरु पिता जी ने मुझे यही शिक्षा दी है कि -

निज नारी के साथ नेहुं तुम नित बड्यहु।

पर नारी की सेज, भूलि सुपने हूं न जैयहु।

रूप कूअर प्रथाइ पा: 10

यानि भूल कर भी पर नारी का ख्याल मन में नहीं आना चाहिए। मन को जीतने के लिए साधना करनी पड़ती है। सम, दम व नियम अपनाने पड़ते हैं। जिन लोगों के अन्दर जिज्ञासा है वे इस पुस्तक को खरीद सकते हैं क्योंकि इस पुस्तक की कीमत भी कोई बहुत अधिक नहीं है। गुरु महाराज जी ने सन् 1699 ई. की वैसाखी को एक ऐसी क्रान्ति उत्पन्न कर दी कि आपने एक ही मनुष्य के अन्दर चारों गुण भर दिए। पहले आम लोगों को क्षत्रिय, ब्राह्मण, शूद्र व वैश्य चार वर्णों में बाँटा हुआ था लेकिन अब दशमेश जी ने इन चारों गुणों को एक मनुष्य के अन्दर ही भर दिया। दरअस्त जो श्री गुरु नानक देव जी के उपदेश थे उन्हीं को प्रयोगात्मक रूप में दशमेश जी ने प्रकट किया। आपने बतलाया कि जिस उपदेश को गाया जा रहा है, वह न केवल गाने या सुनने वालों के लिए ही वरन यह उपदेश तो सर्व मानवता के लिए ही है -

खत्री ब्राह्मण सूद वैस उपदेसु चहु वरना कउ साझा॥
गुरमुखि नामु जपै उधरै सो कलि महि
घटि घटि नानक माझा ॥ अंग - 748

गुरवाणी सब की सांझी है। एक मनुष्य के अन्दर ही सारे गुण भर दिए गए। जो क्षत्रिय लोग थे, उनका कार्य युद्ध आदि करना था, वैश्यों का कार्य व्यापार वगैरह करना था, ब्राह्मणों का कार्य ब्रह्म की विचार करना तथा शूद्रों का कार्य इनकी सेवा करना था। सतगुरु जी ने कृपा करके अपने सिक्ख को शस्त्रधारी बनाकर इसमें क्षत्रियों के गुण भर दिए। मेहनत की रोटी कमाने का आदेश करके आपने वैश्यों के गुणों का समावेश कर दिया। जो यह नाम का जप करता है यह ब्राह्मणों का गुण है तथा सेवा भाव का जो कार्य है, यह शूद्रों का गुण है। इस प्रकार से महाराज जी ने एक ही मनुष्य के अन्दर इन सभी गुणों को डालकर उसे पूर्ण मनुष्य बना दिया, खालसा बना दिया। भेष के लिए तो गुरु जी कथन करते हैं -

भेख दिखाइओ जगत को लोगन को बस कीन।

यदि करता है तो फिर क्या होगा -

अंत काल काती कटि बास नरक मो लीन।

रहित पिआरी मुझ कउ सिख पिआरा नाहि।

रहिणी रहै सोई सिख मेरा।

एहु ठाकुरु, मै उस का चेरा।

रहितनामा भाई देसा सिंघ जी

भेष तो एक वर्दी होती है सतगुरु जी ने कहा कि मुझे तो रहित (नियम व मर्यादा) प्यारी है -

आतम रस जिह जानही, सो है खालस देव।

प्रभ महि मो महि तास महि रंचक नाहिन भेव।

यदि आत्म चिन्तन करके नाम में स्थित हो गया तो फिर तो वह मेरा ही रूप बन गया -

हरि हरि जनु दुइ एक है

बिब बिचारि किछे नाहि

जल ते उपज तरंग जिउ

जल ही बिखै समाहि।

फिर मुझमें तथा उसमें कोई फर्क नहीं रह जाता है। यदि केवल भेष ही है तो वह स्वीकार्य नहीं है। अतः सिक्ख को सारी रहितें रखनी आवश्यक हैं। यथा -

करन न सुनै काहू की निंदा ॥

सभ ते जानै आपस कउ मंदा ॥

गुर प्रसादि बिखिआ परहरै ॥

मन की बासना मन ते टरै ॥

इंदी जित पंच दोख ते रहत ॥

नानक कोटि मधे को औसा अपरस ॥ अंग - 274

ये आन्तरिक रहते हैं -

जिनि मिलि मारे पंच सूरबीर औसो कउनु बली रे ॥

अंग - 404

इसके आगे बड़े-बड़े हार मान गए लेकिन यदि गुरु जी की कृपा हो जाए तो यह सब सम्भव हो जाता है -

मनु बसि आवै नानका जे पूरन किरपा होइ ॥

अंग - 298

अब गुरु दशमेश जी ने यह उपदेश निःशंक रूप से माता जीतो जी को किया था, जिसका सारा वृत्तांत भाई सन्तोष सिंह जी ने सूरज प्रकाश में लिखा है कि किस प्रकार से दशमेश जी ने सम, दम व नियम समझाए तथा फिर आसन बतलाए। अब माता जी ब्रह्ममुहूर्त में जाग जाते हैं। जिस समय कि सारा संसार गहरी नींद में सोया होता था। यथा -

भिंनी रैनड़ीऔ चामकनि तारे ॥

जागहि संत जना मेरे राम पिआरे ॥ अंग - 459

उस समय तो कोई विरला व्यक्ति ही जागा करता है। महापुरुष तो इस समय जानने के समय का शेर के शिकार का दर्जा देते हैं क्योंकि जो व्यक्ति इस समय को नहीं सम्भालता है तो इसे फिर धिक्कारें ही पड़ती हैं, सारे वेद शास्त्र, स्मृतियाँ, धार्मिक ग्रन्थ, श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी की वाणी बार-बार कह रही है कि ब्रह्ममुहूर्त में उठो और नाम का जप करो -

करि इसनानु सिमरि प्रभु अपना

मन तन भए अरोगा ॥

कोटि बिघन लाथे प्रभ सरणा प्रगटे भले संजोगा ॥

अंग - 611

हाइड्रोजन और आक्सीजन का सुमेल है - पानी। पानी के द्वारा स्नान करना है। आक्सीजन एक प्राणवायु है। स्नान करने का एक विधि-विधान है और विधिपूर्वक स्नान करके नाम स्मरण करने का बहुत अधिक महात्म्य है। ऐसा नहीं है कि स्नान करके सो जाओ। ऐसे स्नान को स्वीकृति नहीं दी गई है -

जल कै मजनि जे गति होवै नित नित मेंडुक नावहि ॥

जैसे मेंडुक तैसे ओइ नर फिरि फिरि जीनी आवहि ॥

अंग - 484

गुरसिक्ख को स्नान करके, सावधान होकर नाम का जप करना चाहिए -

गुर सतिगुर का जो सिखु अखाए

सु भलके उठि हरि नामु धिआवै ॥

उदमु करे भलके परभाती

इसनानु करे अंग्रित सरि नावै ॥

उपदेसि गुरु हरि हरि जपु जापै

सभि किलविख पाप दोख लहि जावै ॥

अंग - 305

चार प्रकार के किलविख पाप माने गए हैं -

ब्रह्मण कैली घातु कंजका अणचारी का धानु ॥

अंग - 1413

ब्राह्मण को मार डालना ब्रह्म हत्या है यह किलविख पाप है, गऊ हत्या, कन्या की हत्या, चरित्र की हत्या, गैर वाजिब ढंग से धनोपार्जन करना आदि सब किलविख पाप हैं। इसलिए -

नर अचेत पाप ते डरु रे ॥

अंग - 220

जो किलविख पाप हैं, यह कभी भी उतर नहीं सकता है।

इसके बाद आता है - आसन। आसन में सीधा बैठ जाना है, 90 डिग्री पर शरीर सीधा रखना है। इधर-उधर घुटना या कन्धा नहीं हिलाना है। इस प्रकार आसन में बैठने से ऊर्जा का बहाव शुरू हो जाता है। रीढ़ की हड्डी सीधी रखनी है, यदि यह टेढ़ी हो गई तो फिर योगिक नींद आने लगती है। बाहर से तो लगता है कि समाधि लगी हुई है लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं होता है।

सम, दम, यम, नियम के बाद यह सिद्ध करना होता है कि 45 मिनट तक शरीर का कोई भी अंग न हिले इसके बाद आता है - प्राणायाम।

यहाँ पातशाह जी ने कहा है -

उपदेसि गुरु हरि हरि जपु जापै

सभि किलविख पाप दोख लहि जावै ॥ अंग - 305

फिर यह किलविख पाप भी उतर सकते हैं, बशर्ते आन्तरिक स्नान करके नाम में स्थित हो जाए क्योंकि -

गुर का सबदु काटै कोटि करम ॥ अंग - 1195

आज जो हम लोग दुखी हो रहे हैं तो यह सब किलविख पापों के कारण ही हैं। दरअस्त हमारा आचार, आहार, व्यवहार आदि सब गिरावट में चला गया है और इसीलिए तन, मन व धन को शुद्ध करना पड़ता है। गुरु घर में आकर चरण-रज प्राप्त होती है। दो प्रकार की चरण धूल होती है। एक होती है मुख के वचनों की धूल और दूसरी होती है चरणों की धूल। इसी प्रकार से गुरुमन्त्र के द्वारा जुड़कर, नाम वाणी के साथ जुड़कर मन को अभिमन्त्रित किया जाता है। अतः जो साधना सम्पन्न है, वह साधू है। इसी प्रकार धन का शुद्धिकरण है। जब आप लोग अपने धन को गुरु सेवा में

लगाते हो तो उससे धन का शुद्धिकरण हो जाता है लेकिन हमारे मन का शुद्धिकरण तो इसी प्रकार से होगा कि -

साध की धूरि करहु इसनानु ॥

साध उपरि जाईऔ कुरबानु ॥ अंग - 283

श्री गुरु गोबिंद सिंह जी के जो वचन आ रहे हैं, सम्माननीया माता जी उन्हें अपने हृदय में धारण कर लेते हैं। अब आप एक सैकेंड के लिए भी समय को व्यर्थ नहीं जाने देते हैं। जहाँ तक प्राणायाम की बात है तो गुरु घर में बहुत ही सरल प्राणायाम है -

सासि सासि सिमरहु गोबिंद ॥

मन अंतर की उतरै चिंद ॥ अंग - 295

प्राण वायु, शुद्ध वायु, ब्रह्म मुहुर्त में स्नान करके आसन ग्रहण कर लेना। इसके बाद आती है प्राणायाम की बारी। श्वास को देखना, अन्दर को श्वास जाता है 'वाहि ...' कहो और बाहर की ओर आता है 'गुरु ...' कहो। यदि हम सब इस अभ्यास को ब्रह्ममुहुर्त में करने लग जाएँ तो नाम स्मरण के साथ-साथ जितना गहरा श्वास अन्दर लेकर हम उसे छोड़ेंगे तो उतनी ही प्राणवायु हमारे अन्दर की सफाई करेगी। जैसे ही कार्बनडाइआक्साइड बाहर आएगी हमारे शरीर की सारी बीमारियाँ भी स्वतः ही बाहर आ जाएँगी।

परमेसरि दिता बंन ॥

दुख रोग का डेरा भंन ॥

अनद करहि नर नारी ॥

हरि हरि प्रभि किरपा धारी ॥ 1 ॥

संतहु सुखु होआ सभ थाई ॥

पारब्रह्म पूरन परमेसरु

रवि रहिआ सभनी जाई ॥ रहाउ ॥

धुर की बाणी आई ॥

तिनि सगली चिंत मिटाई ॥

दइआल पुरख मिहरवाना ॥

हरि नानक साचु वखाना ॥ अंग - 628

यह बात बिल्कुल सत्य है जो लोग इसे करते हैं उन्हें इस अभ्यास के बारे में पता है। श्वास को अन्दर भर लिया। प्राण वायु अन्दर भर गई पेट बाहर की तरफ आ गया, श्वास को जब हम अन्दर रोकते हैं, तो उसे कुम्भक कहते हैं और जब उसे बाहर छोड़ते हैं तो उसे रेचक कहते हैं। यह बहुत ही सरल मार्ग है। दूसरी तरफ इसके साथ ही हमने अपनी सुरति को शब्द की तरफ ले जाना है और शब्द है - धुनकार -

जागत जोति जपै निसु बासुर,

एक बिनाँ मन नैक न आनै ॥

अतः इसे नित्य प्रतिदिन जपना है जब बोलकर करते हैं, तो वह बैखरी वाणी है इसके आगे मध्यम हा फिर पसन्ती

और अन्त में आती है - परावाणी। शब्द की आवाज की तरफ सुरति को ले जाना है, नाभि पर पूरा जोर दिया जाता है और जब श्वास को छोड़ोगे तो पुनः कार्बनडाइआक्साइड बाहर आएगी फिर इसके ऊपर गुरु का मन्त्र चलेगा जो भी आपने मन्त्र अपने गुरु से लिया है। दरअस्त नाम हमारे अन्दर ही है और उस नाम तक हमें अपने गुरु घर का मन्त्र ही ले जाता है क्योंकि हम तो अपने गुरु की ही बात करते हैं। अतः अन्दर को श्वास जाता है तो -

वा.....हि.....गु.....रु।

सुरति का काम है सुनना जिधर से आवाज आएगी यह उसी तरफ जाएगी। सुरति को ऊँचा उठाओ। इसे प्राण की मदद लेकर शब्द के साथ जोड़ो। धन्य श्री गुरु गोबिंद सिंह महाराज जी ने माता जीतो जी को उपदेश दिया यह गुरुमति योग है, इसे महापुरुषों ने एक पुस्तक के रूप में प्रस्तुत कर दिया है और उस पुस्तक का नाम है - सुरति सबदि मार्ग।

कलजुग नानक नाम सुखाला।

यह कोई कठिन नहीं है बल्कि इसे प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है। जब सुरति, शब्द को पकड़ लेती है तो फिर वह दोबारा उसे नहीं छोड़ती है।

सखी वसि आइआ फिरि छोडि न जाई

इह रीति भली भगवतै ॥ अंग - 249

गृहस्थ मार्ग त्याग का मार्ग नहीं बल्कि उदास का मार्ग है। गुरु नानक महाराज जी ने उदासियाँ धारण कीं। सब कुछ करते हुए मन के धरातल पर उदास रहना है -

नानक सतिगुरि भेटिऔ पूरी होवै जुगति ॥

हसंदिआ खेलंदिआ पैनंदिआ खावंदिआ

विचे होवै मुकति ॥ अंग - 522

यह नहीं कि अपनी जिम्मेदारियों को छोड़कर दौड़ जाओ, भगौड़े हो जाओ, बल्कि घर परिवार में रहते हुए निर्लिप्त होकर रहो और -

विचि दुनीआ सेव कमाईऔ ॥

ता दरगह बैसणु पाईऔ ॥

कहु नानक बाह लुडाईऔ ॥ अंग - 26

नामु अउखधु मो कउ साधू दीआ ॥ अंग - 101

संतन मो कउ पूंजी सउपी तउ उत्तरिआ मन का धोखा ॥ धरम राइ अब कहा करैगो जउ फाटिओ सगलो लेखा ॥ अंग - 614

इस प्रकार से यह दवाई सबके अन्दर है -

हरि अउखधु सभ घट है भाई ॥

गुर पूरे बिनु विधि न बनाई ॥

गुरि पूरै संजमु करि दीआ ॥

नानक तउ फिरि दूख न थीआ ॥ अंग - 259

यह औषधि सबके अन्दर पड़ी है लेकिन व्यक्ति को इसका पता ही नहीं चल पाता है। कारण? कारण यह है कि पहली बात तो यह गुरु से मन्त्र ही नहीं लेता है, यदि मन्त्र ले भी ले तो इसे युक्ति का पता नहीं चल पाता है। यदि युक्ति का पता चल जाए तो उसकी कमाई नहीं करता है। सत्संग में आने से ही नाम जपने की युक्तियों का पता चल पाया करता है। आत्म मार्ग मैगजीन क्या है? इसमें महापुरुषों के सत्संग का संग्रह किया हुआ है। उसमें स्वामी राम जी का अनुभव भी आ गया है। क्योंकि -

सति बचन साधू सभि कहत ॥ अंग - 294

उसमें जो वचन आते हैं, ये सब गुरवाणी के प्रकाश में हैं, इसलिए ये हमारे अन्दर को खोलते चले जाते हैं, यह मैगजीन हिन्दी के साथ-साथ पंजाबी और अंग्रेजी में भी प्रकाशित होता है। पंजाब के लोग पंजाबी में अधिक पढ़ते हैं तथा भारत के अन्य राज्यों में हिन्दी में पढ़ा जाता है तथा विदेशों में प्रायः अंगरेजी के प्रकाशनों की माँग रहती है। इसमें आन्तरिक गूढ़ रहस्य खुलते जाते हैं और अनुभव प्रकट होता है, इसीलिए मंच से यह अपील की जाती है कि इसे अपने घरों में अवश्य लगवाओ।

अतः धन्य गुरु गोबिंद सिंह महाराज जी ने उपदेश दिया फिर आगे सबकी समाधियाँ लग गईं। धारना से ध्यान और ध्यान से समाधि। समाधि भी दो प्रकार की होती है एक है - साविकल्प और दूसरी है - निर्विकल्प। जहाँ पर संकल्प आते हैं कि इतने देर से बैठे हुए हैं वह साविकल्प समाधि है और जहाँ पर देश, काल व वस्तु से ऊपर उठ जाया जाता है उसे निर्विकल्प समाधि कहते हैं।

सम्माननीया माता जीतो जी आज ब्रह्ममुहर्त में समाधि स्थ अवस्था में है, उन्हें संकल्प आया कि श्री आनन्दपुर साहिब का घेरा पड़ चुका है, सारा दृश्य समाने आ गया, लड़ाई, युद्ध साहिबजादों की शहादत, माता जी की शहादत यानि कि सारे दृष्टान्त सामने आ गए। आपने दशमेश जी को पूछा, महाराज जी! यह सब क्या है? महाराज जी ने कहा यह सब कुछ होकर ही रहेगा। माता जी कहने लगे, महाराज जी! मैं तो यह सब कुछ अपनी आँखों से नहीं देख पाऊँगी। महाराज जी बोले कोई बात नहीं आप इस अवस्था में पहुँच चुके हो कि -

गुरमुखि आवै जाइ निसंगु ॥ अंग - 932

अतः माता जी ने ब्रह्मरन्ध्र के माध्यम से सीधे बैठकर अपने शरीर का त्याग कर दिया।

अतः गुरमति योग जो है इसे आप अवश्य अपनाओ। विचारें चाहे कितनी भी करते रहो लेकिन वास्तविक तत्व सार होता है। सार को अवश्य अमल में लाना चाहिए। जब हम इसे अमल में लाएँगे तो फिर हमारे सारे किलविख पाप दूर हो जाएँगे। यथा -

**उपदेसि गुरु हरि हरि जपु जापै सभि किलविख पाप
दोख लहि जावै ॥ फिरि चडै दिवसु गुरबाणी गावै
बहदिआ उठदिआ हरि नामु धिआवै ॥ जो सासि
गिरासि धिआए मेरा हरि हरि सो गुरसिखु गुरु मनि
भावै ॥ जिस नो दइआलु होवै मेरा सुआमी तिसु
गुरसिख गुरु उपदेसु सुणावै ॥ जनु नानकु धूड़ि मंगै
तिसु गुरसिख की जो आपि जपै अवरह नामु जपावै ॥
अंग - 305**

ऐसे गुरसिख की तो फिर धूल भी पावन कर देती है-

**दानु महिंडा तली खाकु जे मिलै त मसतकि लाईअै ॥
कूड़ा लालचु छडीअै होइ इक मनि अलखु धिआईअै ॥
फलु तेवहो पाईअै जेवेही कार कमाईअै ॥ जे होवै पूरबि
लिखिआ ता धूड़ि तिना दी पाईअै ॥ मति थोड़ी सेव
गवाईअै ॥ अंग - 468**

इसलिए आओ! हम सब यह प्रार्थना करें कि यह धूल हमें हमेशा मिलती रहे -

**अंतरजामी पुरख बिधाते सरधा मन की पूरे ॥
नानक दासु इहै सुखु मागै
मो कउ करि संतन की धूरे ॥ अंग - 13**

नाम जपने से सारे दुख दूर हो जाएँगे। आज संसार दुखी है, इसका मुख्य कारण यही है कि हम नाम को भूल चुके हैं और नाम में ही सुख-शान्ति है।

**सुंदर सेज अनेक सुख रस भोगण पूरे ॥
गिह सोइन चंदन सुगंध लाइ मोती हीरे ॥
मन इछे सुख माणदा किछु नाहि विसरे ॥
सो प्रभु चिति न आवई विसटा के करै ॥
बिनु हरि नाम न साँति होइ कितु बिधि मनु धीरे ॥
अंग - 707**

अतः हम सबको नाम की कमाई व नाम का अभ्यास करना चाहिए। दो समयों को जरूर ही सम्भाला करो। इस श्वास के नाम का अभ्यास महापुरुषों ने सातवें समागम में स्वयं करवाया था।

**वाहिरु जी का खालसा वाहिरु जी की फतिह।
वाहिरु जी का खालसा वाहिरु जी की फतिह।**



गुरबाणी अर्थ भण्डार

सन्त हरी सिंह जी रन्धावे वाले

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक अप्रैल, पृष्ठ - 60)

सिरौरागु महला 1 घर 3

काजी नूरदीन ने पूछा कि सतगुरू जी! आन्तरिक खेती करने के कोई और उपाय भी बतलाओ तो उस समय सतगुरू जी तीसरे घर में (तीसरे सुरताल में) यह शब्द उच्चारण करते हैं -

**अमलु करि धरती, बीजु सबदो करि;
सच की आब, नित देहि पाणी॥**

अमलु = जो गुरू जी के हुक्म का पालन करना है, इसे धरती बनाओ, गुरू साहिब जी के सबदो = गुरू उपदेश को बीज बनाओ तथा सच्चे नाम रूपी पानी की तरावट कर दो।

**होइ किरसाणु ईमानु जंमाइ लै;
भिसतु दोजकु मूड़े एव जाणी॥**

किरसाणु = जिमींदार होकर ईमानु = धर्म रूपी खेती, को जंमाइ लै = जमा लो, भावार्थ हृदय में धर्म को उत्पन्न कर लो। मूड़े = हे मूर्ख मनुष्य! देव जाणी ऐसा जान लो कि गुरू द्वारा दिए गण धर्म को कमा कर भिसतु = स्वर्ग को जाएगा और यदि नहीं कमाया तो फिर दोजकु = नर्कों को जाएगा।

मतु जाण; सहि गली पाइआ॥

कहीं यह मत समझ लेना कि सहि = परमात्मा रूपी पति को बातों के द्वारा ही पाया जा सकता है।

**माल कै माणै, रुप की सोभा;
इतु बिधी जनम गवाइआ॥१॥रहाउ॥**

मेरे पास मालु = बहुत घोड़े, भैंसे व गाएँ आदि हैं। इस बात के माणै = अहंकार में तथा रूप की शोभा = सुन्दर रूप की शोभा में ही इतु बिधी = इस प्रकार से जीव ने अपने जन्म को व्यर्थ में ही गंवा लिया है भावार्थ जो सुन्दर स्वरूप हाथी घोड़े व दौलत आदि के अहंकार में फंसे रहते हैं वे बेशकीमती मनुष्य जन्म को व्यर्थ में ही गंवा लेते हैं -

**औब तनि चिकड़ो, इहु मनु मीडको;
कमल की सार, नही मूलि पाई॥**

तनि = शरीर में जो अँन = गुनाह हैं, चिकड़ो = ये कीचड़ की भांति है तथा इसमें जो यह मन है वह मीडको = मेंढक की भांति है। इसने परमात्मा रूपी कमल की सार = खबर मूलि = तनिक भी नहीं प्राप्त की है भावार्थ इस शरीर के गुनाहों के कीचड़ में मन मेंढक की भांति निवास करता है और वह विकारों रूपी जाले को खा रहा है लेकिन वह हृदय रूपी कमल में बैठे हुए प्रभु के रस को नहीं प्राप्त करता है जैसे कि मेंढक सरोवर आदि के कीचड़ में ही निवास करता है और वह कीचड़ के ऊपर खिले हुए कमल के रस के स्वाद या सुगन्ध को नहीं भोगता है।

**भउरु उसतादु, नित भाखिआ बोले;
किउ बूझै, जा नह बुझाई॥**

उसतादु = गुरू जी रूपी भउर = भ्रमर नित्य प्रतिदिन ही भाखिआ बोले = उपदेश रूपी सुन्दर वचन बोल रहे हैं भावार्थ प्रतिदिन सतगुरू जी उपदेश करते हैं लेकिन यह मन रूपी मेंढक कैसे समझे अथवा जब तक वह मालिक प्रभु कृपा करके स्वयं ही जीव को समझ नहीं प्रदान करता है तब तक यह बेसमझ जीव कैसे समझ सकता है अर्थात् यह तो गुरू द्वारा बुझाई = समझाने पर ही समझ सकता है।

**आखणु सुनणा, पउण की बाणी;
इहु मनु रता माइआ॥**

तब तक प्रभु जी के ज्ञान के बारे में आखणु = सुनना व सुनाना पउण = हवा की वाणी = आवाज की भांति ही है भावार्थ जिस प्रकार से हवा के द्वारा वृक्षों के पत्ते घर्षण करके आवाज उत्पन्न करते हैं और उस आवाज का कोई असर नहीं पड़ता है। उसी प्रकार से उनका उपदेश प्रभावहीन ही होता है, जिनका मन अभी माया में ही रंगा हुआ है।

**खसम की नदरि, दिलहि पसिंदे;
जिनी करि एक धिआइआ॥**

जिनके ऊपर खसम = वाहिगुरू जी की नदरि = कृपा

दृष्टि हुई है वे दिलहि = हृदय में ही प्रभु जी को पसिंदे = देख लेते हैं। यह कृपादृष्टि उनके ऊपर होती है जिनी = जिन्होंने प्रभु जी का ध्यान करि = करके उस एकु = एक की ही धिआइआ = आराधना की है।

**तीह करि रखे, पंज करि साथी;
नाउ सैतानु, मतु कटि जाई॥**

हे काजी! यदि तुमने रमजान के महीने में तीस रोजे रखे हैं और पाँचों वक्त की पाँचों नमाजों को समय पर अदा करते हो ताकि वे परलोक में तुम्हारे साथ जाएंगी लेकिन तुम्हारे ही मतानुसार यदि सैतानु = बदी का फरिश्ता इन रोजों और नमाजों को काट जाए तो इनका फल शून्य हो जाता है अर्थात् तुम जो तीस रोजे रखते हो तथा पाँचों वक्त की नमाजें भी पढ़ते हो लेकिन तुम्हें पता है कि जिसका नाम शैतान है वह तुम्हारी मत में से शुभ गुणों का काटता जा रहा है।

**नानक आखै, राहि पै चलणा;
मालु धनु कित कू संजिआही॥**

रूह ने परलोक के मार्ग पर चलना है भावार्थ उसने एक दिन चल पड़ना है, फिर यह माल = गाएँ, भैंसों व घोड़े आदि धनु = दौलत कित = किसके लिए संजिआही = एकत्र करने हैं भावार्थ जब ये संसार के सारे पदार्थ व दौलत आदि को छोड़ कर चले ही जाना है तो फिर इन्हें किसके लिए एकत्र करना है। इन्हें न तो कोई साथ में लाया है और न ही कोई साथ में ले जाएगा।

**सिरीरागु महला 1 घरु 4
सोई मउला, जिनि जगु मउलिआ;
हरिआ कीआ संसारो॥**

वास्तव में तो सोई = वह खुदा ही मउला = मालिक है जिनि = जिसने सारे जगु = जगत को मउलिआ = प्रफुल्लित करके सारे, संसारो = शंकाओं को अपनी चेतन सत्ता प्रदान करके हरा-भरा किया है यानि कि जिस चेतन सत्ता को पाकर आँखें देखती हैं, कान सुनते हैं, हाथ-पैर चलते हैं, रसना बोलती है, मन संकल्प करता है तथा बुद्धि निश्चय व निर्णय करती है, जिसने सारे संसार को चेतनता प्रदान की हुई है, वही तो असली मालिक है।

**आब खाकु जिनि बंधि रहाई;
धनु सिरजणहारो॥**

जिनि = जिसने आब = पानी तथा खाकु = मिट्टी आदि पाँच तत्वों द्वारा इस शरीर अथवा सारी सृष्टि को बंधि = बाँध कर रखा हुआ है, भावार्थ मिट्टी के मुकाबिले पानी कई

गुना है लेकिन फिर भी वह (पानी) इसे (पृथ्वी को) डुबोता नहीं है और यह धरती तो पानी में नाव की भांति है।

मरणा मुला; मरणा॥

मुला = हे मुल्ला! यह निश्चय करो कि मरणा = मृत्यु तो अवश्यम्भावी है वह तो आनी ही है।

भी; करतारहु डरणा॥1॥ रहाउ॥

फिर भी करतारहु = उस प्रभु जी से डरना ही चाहिए। कई लोग कहते हैं कि हमें तो परमात्मा ने पहले ही बहुत सारे दुख दिए हुए हैं अब वह और क्या करेगा? फिर अब हम उसका भय या भक्ति क्यों करें?

**ता त मुला ता त काजी;
जाणहि नामु खुदाई॥**

तुम तभी मुल्ला (पढ़ाने वाला शिक्षक) या काजी (शरह या व्यवस्थाओं का ज्ञाता) हो यदि तुम खुदाई = खुदा के नाम को जाणहि = जानते हो भावार्थ उसे जपते हो। भावार्थ हे मुल्ला! युद तुम अपने मन को ज्ञान पढ़ाते हो तभी तुम असली मुल्ला हो और हे काजी! यदि तुम परमार्थ की शरह व्यवस्था के ज्ञाता व संस्थापक हो तभी तुम सच्चे काजी हो।

**जे बहुतेरा पड़िआ होवहि;
को रहे न भरीअै पाई॥**

जे = यदि तुमने बहुतेरा = बहुत अधिक धार्मिक ग्रन्थ जैसे अंजील, कुरान, तौरैत व जम्बूर आदि पढ़े हुए हो लेकिन जब श्वासों की पूँजी समाप्त हो गई तो फिर यह शरीर नहीं रुक पाता है, भावार्थ यह जीव संसार से कूच कर जाता है, भले ही वह कितना ही पढ़ा-लिखा क्यों न हो।

**सोई काजी, जिनि आपु तजिआ;
इकु नामु कीआ आधारो॥**

हमारे मतानुसार तो वही असली काजी या मुल्ला है जिनि = जिसने आपु = अपने अहंभाव का त्याग करके परमेश्वर के नाम का आधारो = सहारा लिया है।

**है भी होसी, जाइ न जासी;
सचा सिरजणहारो॥**

जो प्रभु अब वर्तमान समय में भी है, पहले भूतकाल में भी था और आगे भविष्य में भी होगा तथा वह जाइ न जासी = न वह जाइ = पैदा होता है और नह ही वह जासी =

(शेष पृष्ठ 51 पर)

1699 की बैसाखी पूरी होई करामाति आपि सिरजणहारै धारिआ

डा. जगजीत सिंह

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक अप्रैल, पृष्ठ - 59)

क्षत्रिय के रूप में गरीब मार कभी नहीं होने देता। राजा से अपने अधिकारों की पूर्ति के लिये संघर्ष करता है, दुश्मन को अपने देश की ओर टेढ़ी नज़रों से देखने नहीं देता और इन कार्यों की पूर्ति के लिये प्रसन्नता पूर्वक अपनी जान, गुरु प्यार में अर्पण कर देता है। देश की रक्षा का जबरदस्त पहरेदार है, गरीब तथा मज़दूर का मददगार है। अनाथों, शक्तिहीनों, बुद्धिहीनों, बेघरों, बेरोजगारों के लिये दर्द भरा मित्र है। स्त्री रक्षा के लिये और गरीब की सहायता के लिये अपनी जान कुर्बान करना गुरु की रज़ा समझता है और शस्त्रों को धर्म का अंग मान कर अपने अंग संग रखता है।

वैश्य के रूप में रहता हुआ यह व्यापार, नौकरी चाकरी के लिये देश विदेश में जाता है। वह गुरुमत का प्रकटावा करके जहाँ धन कमाता है, वहाँ प्रचारक का रूप धारण करके, वहाँ के लोगों को गुरुमत सिद्धान्तों की जानकारी देता है और भ्रमों, प्रपंचों को नाश करने का उपदेश देता है। खेती-बाड़ी करता कारखाने चलाता, व्यापार करता है। डाक्टर, वैज्ञानिक, न्यायाधीश (जज), वज़ीर आदि की पदवी प्राप्त करके समाज की सेवा करता है। शूद्र के रूप में सेवा करने को यह सबसे पवित्र कार्य जानता है और इसका परिपक्व निश्चय है कि -

विचि दुनीआ सेव कमाईऐ।

ता दरगह बैसणु पाईऐ।

कहु नानक बाह लुडाईऐ॥

अंग - 26

और -

सेवा करत होइ निहकामी।

तिसु कउ होत परापति सुआमी॥

अंग - 26

इस प्रकार के महान आदर्श को अपना कर सेवा के महान कार्य को ब्राह्मण के वेद के पाठों से भी ऊँचा बना देता है।

गुरु दशमेश पिता जी ने खालसा के शारीरिक बल में चारों वर्ण जज़ब कर दिये और खालसा को कर्म योगी बना कर ऋषियों-मुनियों, पीरों, पैगम्बरों, फकीरों से भी कहीं ऊँचा बना दिया। यह गृहस्थी होता हुआ पूर्ण ब्रह्मज्ञानी भी है, पूर्ण योगी भी है, महाऋषि भी है, माया से पूर्णतया निर्लेप है। संसार में घट-घट में व्याप्त वाहिगुरू को प्रत्यक्ष अनुभव करता है। सो गुरु महाराज जी ने एक ही आदमी में चारों वर्णों के गुण दाखिल कर दिये और इसे गुरु की पदवी प्रदान करते हुये फ़रमान किया -

खालसा मेरो धरम अर करम।

खालसा मेरो भेद निज मरम।

खालसा मेरो सतिगुर पूरा।

खालसा मेरो सजन सूरा॥

सरब लोह ग्रन्थ

इस खालसा की पदवी वाहिगुरू, गुरु के बराबर कर दी यानि इसे अकाल पुरुष में अभेद कर दिया। सो इस प्रकार बेअन्त कष्ट सहन करके यह आदर्श संसार में प्रकट किया। एक मनुष्य को पूर्ण मनुष्य बना कर संसार में पेश करना, एक बहुत बड़ी करामात थी। छोटी-छोटी करामातें -हवा में उड़ जाना, पानी में डुब कर जीवित रहना, सिद्धों की तरह पानी का तालाब हीरे जवाहरात से भर देना, धरती के कणों को सोना बना देना, आम पत्थर को पारस बना देना, शेरों की सवारी करना, हाथ में नागों के हंटर पहन लेने, बहुत बड़ा, ऊँचा लम्बा शरीर बना लेना और छोटे से छोटा अपना रूप बना लेना आदि अनेक करामातें संसार में तपोबल के साथ तथा योग साधनों द्वारा अकेला मनुष्य प्राप्त कर लेता था पर सबसे बड़ी करामात आम मनुष्यों के मन में नाम का वास करा देना और उस नाम के बलबूते पर साहसहीन मनुष्य को इतना ऊँचा उठा लेना कि उसे परमेश्वर के साथ अभेद अवस्था में लीन होकर पूर्ण रूप में प्रभु ही

बना देना एक बहुत ही बड़ी करामात थी। भारत जैसे बेअन्त जुल्मों के नीचे चिथड़े हुये बलहीन तथा बुद्धिहीन मनुष्य को एक पूर्ण पुरुष के रूप में प्रकट कर देना, जो आध्यात्मिक कार्यों को करने के लिये खत्री है, नया से नया तजुर्बा करके वैज्ञानिक, डाक्टर, प्रोफैसर, जरनैल और अच्छे से अच्छा शासक होकर, नेक कार्य करके वैश्य के काम करने वाला भी बना देना, बड़ी से बड़ी पदवी सम्मान प्राप्त करके छोटी से छोटी सेवा करने के लिये तत्पर रहना जैसे कि जोड़े झाड़ने (जूते साफ करना), पंखे झुलाना, जल पिलाना, दरियां बिछानी, हस्पतालों में अनजान लोगों की सेवा करना, लंगर बनाना, लंगर खिलाना, झूठे बर्तन साफ करने, आदि से सभी सेवायें करता हुआ गुरसिख योगी का आत्म रस में लीन होकर पूर्ण खालसा होते हुये इतनी ऊँची पदवी प्राप्त कर लेना, वह स्वयं ही प्रभु के रूप में दृष्टि आने लगता है कि -

आत्म रस जिह जानही, सो है खालस देव।

प्रभ महि, मो महि, तास महि, रंचक नाहन भेव ॥

सरब लोह ग्रन्थ

सतगुरु की पदवी प्राप्त करता हुआ, एक ही मनुष्य खालसा के रूप में अनेक क्रियाओं का धारणी होता हुआ, संसार में खालसा पद का मालिक होकर विचरना, यह एक बहुत बड़ी करामात थी, जो संसार की रचना से लेकर खालसा आदर्श के प्रकट होने तक किसी से भी नहीं हो सकी। यह महान करामात गुरु दशमेश पिता जी ने मुर्दों को जीवन दान देकर संसार में प्रकट कर दी। करामात यहाँ तक पूरी हुई कि 84 लाख यौनियों में चक्कर लगाने वाला कीड़ा, पतंगा, कुरंग, गज, मीन, मछलियां, पंछी, वृक्ष बनने वाले जीव आत्मा को प्रभु रूप बना देना, एक हैरान कर देने वाली करामात है जो केवल अकाल पुरुष के पुत्र गुरु गोबिंद सिंह जी महाराज द्वारा ही पूरी हो सकी। इस खालसा पदवी पर पहुँचे हुये को श्री परमात्मा की गोद में निवास दिला देना, सरब लोह की कृपा का पात्र बना देना, दशमेश पिता द्वारा ही सफल हो सका। वैशाखी का दिन संसार में एक महान घटना वाला दिन है। आज तक संसार को यह बात समझ में न आ सकी कि खालसा आदर्श क्या है? इसका महत्व कितना उच्चा है? यह संसार का पूर्ण मनुष्य कैसे व्यवहार करता है? कैसे संसार में देखता है तथा वैर (दुश्मनी), जलन, ईर्ष्या से बिल्कुल पाक है, इसके लिये सारा संसार

अपना ही अंग है। प्रत्यक्ष रूप में जब भाई कन्हैया, बिना किसी भेद-भाव के जंग में पानी पिलाता है तो उसकी क्रिया को कोई समझ ही न सका, पर जिनके अन्दर पानी का घूंट उसके हाथों से स्पर्श होकर अन्दर चला जाता था, वह आन्तरिक अन्धकार समाप्त करके नेत्र प्रकाश द्वारा सभी हृदयों में एक वाहिगुरु ही देखता है। जब गुरु दशमेश पिता ने पूछा कि तू पानी किसे पिलाता है? तो उसका उत्तर था “साहिब जी मुझे तुर्क-अतुर्क, हिन्दु-अहिन्दु, अपना-बेगाना, वैरी-मित्र, अच्छा-बुरा, ज़ालिम-मज़लूम कोई भी नज़र नहीं आ रहा, यदि नज़र आता है तो केवल एक तेरा ही रूप घट-घट में व्याप्त नज़र आता है।” गुरु महाराज जी उस पूर्ण रूप मनुष्य से प्रसन्न होकर, मरहम की डिब्बियां तथा पट्टियों का बक्सा देकर कहते हैं, “भाई कन्हैया! तुमने खालसा पद प्राप्त कर लिया है। आगे से जरूरत पड़ने पर, तू मुझे मरहम भी लगाया कर और पानी पिलाकर पट्टियां भी बांधा कर।” यही महान उच्च आदर्श में संसार में प्रकट करने के लिये ब्रह्मलीन समाधि को छोड़कर शरीरधारी हुआ हूँ। कुबुद्धि दूर करके सदबुद्धि का प्रकाश करना, मेरा कर्तव्य है। प्राणिमात्र का भला माँगने के लिये अरदास करना, इस खालसा के लिये जरूरी लालसा है जिस का नाम ‘खालसा’ है। मैंने खालसा कोई भेख नहीं बनाया, मैंने तो एक असली मनुष्य को उसका असली रूप दिखाकर, उसे सारे बन्धनों से स्वतन्त्र करके, वाहिगुरु का रूप ही बनाया है तथा नाम जपने के श्रेष्ठ कर्म का धारणी बनाया है।

अतः प्यारे सुधी व सहृदय पाठकजनो! विचार करो उस महान उच्च आदर्श पर, उस गुरु दशमेश पिता जी की पूरी करामात पर, जो युगो युगान्तरों तक अपने बल से संसार में चलती रही है और खालसा का आदर्श दिन प्रतिदिन ऐसा स्पष्ट और प्रकाशमयी होकर संसार में प्रकट होगा कि सारा संसार खालसा आदर्श को प्राप्त करने के लिये तड़पेगा, इच्छा करेगा क्योंकि यह आदर्श इस स्वपनमयी संसार में पूर्ण है, खालसा पूर्ण ज्ञानवान है, इसने माया को पूर्ण रूप से जीत कर अविद्या के अन्धकार को खण्ड-खण्ड करके प्रकाश ही प्रकाश संसार में फैला देना है।



नूरानी मिलाप

(डा.) भाई सुखविन्दर सिंह

(श्री गुरु नानक देव जी महाराज जी के 2019 में 550 वर्षीय प्रकाश शताब्दी को समर्पित)

**मै मूरख की केतक बात है कोटि पराधी तरिआ रे॥
गुरु नानक जिन सुणिआ पेखिआ से फिरि गरभासि न परिआ रे ॥**

कृपा दृष्टि की दौलत

नदरि या दृष्टि, शब्द का उल्लेख श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के अन्दर अनेकों बार देखने को मिलता है। दरअसल प्रत्येक की अपनी-अपनी दृष्टि होती है और उस दृष्टि के अनुसार ही कृपा की प्राप्ति होती है। यहाँ पर हम सांसारिक मनुष्य की दृष्टि की विचार नहीं कर रहे हैं अपितु यहाँ पर हम सतगुरु जी या परमात्मा के साकार रूप श्री गुरु नानक देव की दृष्टि के सम्बन्ध में विचार कर रहे हैं। नदरी-नदरि निहाल, अमिओ दृष्टि आदि अनेकों शब्दों के माध्यम से गुरुवाणी में सतगुरु जी की कृपा की झलक दिखाई पड़ती है। इस कृपा की वर्षा यदि जन साधारण पर हो जाए तो उसका काया कल्प हो जाता है और वह राक्षसों से मनुष्य तथा मनुष्य से देवते बन जाते हैं, यह एक क्षणिक व अलौकिक लीला होती है। इस कृपा वर्षा की बदौलत जन साधारण फर्श से अर्श पर पहुँचे हुए दिखाई पड़ते हैं, मिट्टी से सोना बने हुए दृष्टिगोचर होते हैं तथा इसी कृपादृष्टि की बदौलत एक कौड़ी मूल्य वाले लाखों व करोड़ों के हो जाते हैं - कउडी का लख हुआ मूलु॥ (अंग - 898), (गोबिंद गोबिंद गोबिंद संगि नामदेउ लीणा॥ आढ दाम को छीपरो होइओ लाखीणा॥ अंग - 487) यानि कि जो कल भिखारी थे वे आज बादशाह बन गए और वे केवल बादशाह ही नहीं बने अपितु वे अन्य लोगों को बादशाहियाँ देने वाले भी बन गए। भाई नन्दलाल जी के अनुसार श्री आनन्दपुर साहिब में श्री गुरु गोबिंद सिंह जी की कृपा की दृष्टि प्राप्त करके, जो कल भिखारी थे वे आज लोगों का बादशाहियाँ वितरित करते हुए देखे जा सकते हैं। एक नहीं बल्कि अनेकों इस कृपादृष्टि के पात्र बने। अन्धकार में रहने वालों को भी इस प्रकार के प्रकाश की प्राप्ति हुई। इस कृपा दृष्टि की बदौलत वे अन्य लोगों को प्रकाश बाँटने वाले प्रकाश स्तम्भ बन गए और यहीं बस नहीं बल्कि वे सृष्टि के अस्तित्व के अन्तिम पल तक जन साधारण को उक्त प्रकाश प्रदान करते रहेंगे।

प्रत्यक्ष को प्रमाण की जरूरत नहीं हुआ करती है। एक बहुत ही शुभ घड़ी हमारे सामने आती है जिस समय वाहिगुरु जी स्वयं साकार रूप में श्री गुरु नानक देव जी के स्वरूप में हमारे सामने प्रकट होते हैं।

सतगुरु जी के प्रकट होने से पहले चौगिरदे के वातावरण की जो शुभेच्छाएँ थीं, जो उनकी लालसाएँ थीं, उन्हें हम विगत अंक में आप जी के साथ शेयर कर चुके हैं। रचयिता निःशंक रूप से अपनी रचना के अन्दर ही बसा हुआ है लेकिन फिर भी तलवंडी की सारी कायनात अपने रचनहार को मिलने की लालसा के कारण उनके स्वागत में तैयार-बर-तैयार दिखाई पड़ रही है।

अब हम उस अत्यन्त भाग्यशाली माता, जिसके ऊपर सबसे पहली कृपा दृष्टि श्री गुरु नानक देव जी की हुई और जिसके फलस्वरूप वह दिव्यानन्द में लीन हुई, का जिक्र करेंगे। मेरे कहने का तात्पर्य माता दौलता दाई से है जिसके ऊपर करोड़ों ब्रह्मांडों स्वामी श्री गुरु नानक देव जी की पहली दृष्टि पड़ी। सतगुरु जी का प्रकाश होने से पहले आप जी के घर का माहौल बहुत ही गहमा-गहमी वाला तथा खुशगवार है। परम सम्माननीय बाबा मेहता कल्याणदास जी ने मोहरों व मिठाइयों के बर्तन भर कर रखे हुए हैं। जरूरतमन्दों के लिए वस्त्र व दुशाले तथा अनेकों वस्तुएँ तैयार हैं। माता दौलता दाई को बुलाया जाता है। इस समय माता तृप्ता जी आनन्द के अन्दर भावविभोर हैं। माता दौलता दाई ने आने के तुरन्त बाद बाबा मेहता कल्याणदास को दोनों हाथ जोड़कर विनती की कि बाबा जी! यदि परमात्मा ने खुशियाँ प्रदान कीं तो आप मेरा गरीब का भी ख्याल रखना। मुझे दो मन दाने देना ताकि मेरे बच्चे भरपेट भोजन कर सकें। माता दौलता के हाथ जुड़े हुए हैं, बाबा जी! मुझे दो गर्म विस्तरे भी देना क्योंकि मेरे बच्चे ठंड में ठिठुरते रहते हैं। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए माता दौलता जी विनतियाँ करते गए कि बाबा जी! दो चार टके भी देना ताकि मेरा

कुछ गुजारा चल सके। सम्माननीय बाबा मेहता कल्याणदास जी ने तथास्तु कहा कि आप तनिक भी चिन्ता मत करो आप को सब कुछ मिलेगा।

माता तृप्ता जी की सेवा में हाजिर होने वाली माता दौलता जी इस प्रकार की विनतियाँ करने के बाद अन्दर माता तृप्ता जी के पास चले जाते हैं और वे माता तृप्ता जी की सेवा में हाजिर होकर स्वयं को भाग्यशाली समझते हैं। अब वह समय भी आ गया, जिस समय कि सृष्टि के सृजनहार परमात्मा ने साकार रूप में प्रकट होना है। आप जी ने माता दौलता जी के हाथों में प्रकाशमान होकर दर्शन प्रदान किए। प्रकाश होते ही आठों दोमुखी दीपकों की रौशनी मद्धम पड़ने लग पड़ी और चहुँओर माता जी ने प्रकाश ही प्रकाश देखा। उस प्रकाश को आँखें सहन नहीं कर पा रही हैं, दरअसल वह कोई साधारण रौशनी नहीं थी, बल्कि उस रौशनी की किरणों में आनन्द था, एक दिव्य सरूर था। अभी माता दौलता जी इस दिव्यानन्द को अनुभव करते हुए उसे आत्मसात् करने का प्रयत्न ही कर रहे थे कि सतगुरु जी ने हँसते हुए दर्शन दिए और आपकी सबसे पहली दृष्टि माता दौलता जी पर ही पड़ी। इधर देवते चन्दन, केसर व कपूर को मिलाकर घर के चौगिरदे को सुगन्धित कर रहे हैं। माता दौलता दाई जी किसी दिव्यानन्द में प्रवेश कर गए। हो गई कृपा दृष्टि और उसका करिश्मा फैल गया। नूरानी कृपा दृष्टि की पात्र बनी माता दौलता दाई जी किसी अलौकिक आनन्द में प्रवेश कर गए हैं। आप माता तृप्ता जी की सेवा करके तो तृप्त हुए ही थे लेकिन सतगुरु जी की दृष्टि को पाकर आपको (माता दौलता दाई जी को) सब कुछ ही प्राप्त हो गया। अब दिव्यानन्द से ओत-प्रोत माता दौलता जी बाहर की तरफ आते हैं। निःशंक रूप से आपके हाथ तो पूर्ववत् ही जुड़े हुए हैं लेकिन अब भिखारियों की भांति नहीं जुड़े हैं, अपितु बादशाहों की भांति जुड़े हुए हैं। अब चाल में गम्भीरता है, चेहरे पर नूर है, रसना व चेहरे पर सब्र व सन्तोष झलक रहा है। अब अलौकिक आनन्द से ओत प्रोत माता दौलता जी, बाबा कल्याणदास जी के पास खड़े हैं। कुछ समय पहले जो माँग माता दौलता दाई जी कर रहे थे, उसके अनुसार बाबा कल्याणदास जी कहने लगे दौलता जी! माँगो क्या माँगना है? माता दौलता जी बोले, बाबा जी! अब माँगने के लिए कुछ रह ही नहीं गया है। अब तो मैं तृप्त हो गई हूँ। अब तो दिल करता है कि जो कुछ मेरे पास पहले वाला भी पड़ा है, मैं उसे भी अपने प्यारे पर कुर्बान कर दूँ। बाबा जी! मुझे तो अब सच्ची दौलत प्राप्त हो गई है, इसलिए अब किसी भी अन्य वस्तु की कोई जरूरत ही नहीं रह गई है। मैं अब पूर्ण

हो गई हूँ, इसलिए अब मुझे किसी वस्तु की कोई भी कमी नहीं है। वास्तविकता यह थी कुछ समय पहले तक माता दौलता जी कुछ और थी और सतगुरु जी की दृष्टि पड़ने के बाद वह कुछ और बन गई थी -

**कचहु कंचनु भइअउ सबदु गुर स्रवणहि सुणिओ ॥
बिखु ते अंभितु हुयउ नामु सतिगुर मुखि भणिअउ ॥
लोहउ होयउ लालु नदरि सतिगुरु जदि धारै ॥
पाहण माणक करै गिआनु गुर कहिअउ बीचारै ॥**

अंग - 1399

और यही है कृपा दृष्टि की दौलत। माता दौलता जी को अब किसी अन्य दौलत की जरूरत ही नहीं रह गई क्योंकि उसके ऊपर तो अब करोड़ों ब्रह्मांडों के स्वामी द्वारा 'नानक नदरी नदरि निहाल' की कृपा हो गई।

**लख खुसीआ पातिसाहीआ जे सतिगुरु नदरि करेइ ॥
निमख एक हरि नामु देइ मेरा मनु तनु सीतलु होइ ॥**

अंग - 44

(पृष्ठ 47 का शेष)

जाएगा वह प्रभु सच्चा = त्रिकाल सत्य है भावार्थ वह सत्य स्वरूप तथा माया रूपी जगत का सिरजणहारो = पैदा करने वाला है।

**पंज वखत निवाज गुजारहि;
पड़हि कतेब कुराणा॥**

हे मुल्ला जी! भले ही तुम पाँच वक्त की नमाज पढ़ते हो अथवा पाँच वक्त तो तुम नमाज में ही समय गुजारहि = गुजार देते हो तथा अनेकों किताबों व कुराणा = कुरान को भी पढ़ते हो, भावार्थ नमाजें अदा करते हुए तथा किताबों व कुरानों आदि को पढ़ते हुए भी अनेकों प्रकार के पाप करते रहते हो।

**नानक आखै गोर सदेई;
रहिओ पीणा खाणा॥**

सतगुरु नानक देव जी फुरमान करते हैं कि यदि मुल्ला जी! तुम्हारी गोर = कब्र तुम्हें सदेई = बुला रही है परन्तु तुम खाने-पीने व पदार्थों के लालच में व्यस्त हो। तुम्हारे ये सभी पदार्थ यहीं पर रह जाएंगे, भावार्थ उस खुदा को याद करके अपने जीवन को सफल कर लो, तुम व्यर्थ में ही अपने बहुमूल्य समय को क्यों गंवा रहे हो?



श्री गुरु ग्रन्थ साहिब - 'सर्वोत्तम'

डा. स्वामी राम जी

श्री सन्त जी (सन्त वरियाम सिंह जी) से मिलकर मुझे जो प्रसन्नता मिली, मुझे ऐसा मालूम हुआ कि जीवन में कोई व्यक्ति तो ऐसा है जो जैसा अन्दर से, वैसा ही बाहर से अपना जीवन व्यतीत करता है। सच्चा, सरल, कोई छल-कपट, पाखण्ड नहीं है। एक महान बात - अगर हमारे भारतवर्ष में सभी सन्त लोग इसी तरह का जीवन अपना लें तो हमारा भारतवर्ष फिर अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त कर सकता है। अब मुझे आप से कहना है - आप सबको यह भी ज्ञान होना चाहिए कि आप नित्य श्री गुरु ग्रन्थ साहिब का पाठ करते हो, जप करते हो, लेकिन एक बात आप समझ लीजिए कि संसार में जितने भी धर्म ग्रन्थ हैं, उन सब में से सरल ग्रन्थ श्री गुरु ग्रन्थ साहिब है। जितना सरल ग्रन्थ, श्री गुरु ग्रन्थ साहिब है और संसार का कोई भी ग्रन्थ नहीं - एक बात। दूसरी बात यह है कि जो निचोड़ सारे धर्मों का, गुरु ग्रन्थ साहिब के अन्दर है, वह आप को अन्य ग्रन्थों में नहीं मिलेगा। यह तो सारे संसार के जितने भी धर्म हैं, उनको फिल्टर करके बनाया गया है। यह सत्ता है गुरु नानक देव जी की, उनकी महान कृपा से और अन्य गुरुओं की कृपा से, उनके बलिदान से बना है। कोई भी संसार का धर्म ग्रन्थ - मैं इस बात को आपके सामने नहीं बोल रहा हूँ, अगर कोई इस पर चर्चा करना चाहे तो मैं उसको 101 प्वाइंट (point) बनाकर के बता सकता हूँ कि ऐसा ग्रन्थ और दूसरा नहीं है।

तीन चीजें समझने की होती हैं। सिक्ख शब्द - सेवक के लिए आया है, जो सेवा करने में ही अपना पूरा जीवन व्यतीत कर देता है। सिक्ख उसे कहते हैं जो कि दूसरों की सेवा करने में आनन्द लेता है। जो दुखी हो, जिसको आवश्यकता हो, उसी की सेवा करता है। दूसरा शब्द है - ग्रन्थ। गुरुओं की जितनी बाणी है, सन्तों की बाणी को ग्रन्थित कर दिया गया है, एक सुचारू रूप में पिरो दिया गया है, उसको कहते हैं - गुरु ग्रन्थ साहिब। मैंने कई भाषाओं में, जिन भाषाओं को मैं जानता हूँ - उन में से श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी स्वाध्याय अध्ययन किया तो मुझे यह लगा कि

गीता कठिन है, बाईबल - वह भी सब की समझ में नहीं आती, कुरान शरीफ भी सब नहीं समझ पाते, लेकिन गुरु ग्रन्थ साहिब को कोई अगर पढ़ ले तो सब की समझ में आ सकता है, बोध, अबोध विद्वान भी उसको समझ लेते हैं। अब तर्क-वितर्क में फँस कर - कि शब्द (प्रभु की सर्व-व्यापक बजने वाली धुन) का क्या अर्थ होता है, कैसे कहा गया है? तो इसके लिए मैं आप से एक बात कहना चाहता हूँ। गुरु लोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर यात्रा करते-करते ही करते चले गये और उनकी बोलियों को जहाँ-जहाँ वे गये, वहाँ-वहाँ के शब्दों को उन्होंने अपनाया - ग्रन्थ साहिब में।

श्री गुरु गोबिंद सिंह जी को सिरड़ चढ़ गई थी। अब ये सिरड़ शब्द जो है, केवल पहाड़ी आदमी जानता है कि सिरड़ क्या होती है? यह पहाड़ी शब्द है। जितनी भी आपकी भाषाएँ हैं, उनके शब्द आपको ग्रन्थ साहिब में मिल जाएंगे - जो भी बोलें आप। जो भी भाषा हो, उसके शब्द अवश्य गुरु ग्रन्थ साहिब में मिले हुए हैं। इसका कारण है कि गुरु लोग भारत भ्रमण पर गए, उस भ्रमण में जहाँ-जहाँ गए, वहाँ-वहाँ की भाषा भी उन्होंने गुरु ग्रन्थ साहिब में ग्रन्थित कर दी। एक महान सागर है - सागर में जो जितनी डुबकी लगायेगा, उतना ही उसको कुछ न कुछ प्राप्त होगा। तो मेरा कहने का मतलब यह है कि श्रद्धा से, भक्ति से आप गुरु ग्रन्थ साहिब का स्वाध्याय करें। केवल गुरु ग्रन्थ साहिब को पूजना ही काफी नहीं है। हम लोग क्या करते हैं प्रायः आरती लेकर, गुरु ग्रन्थ साहिब को उच्च स्थान देकर पूजते हैं। अच्छी बात है यह। यह तो होना ही चाहिए आदर और सत्कार होना चाहिए। लेकिन उसका स्वाध्याय करना, उसको समझना, उसके अनुरूप चलना, बहुत बड़ी बात है। विदेशों में 156 देशों का भ्रमण करने के पश्चात मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि वह कोई भी देश नहीं, जहाँ सिक्ख नहीं हैं और वह भी कोई देश नहीं, जहाँ सिक्ख धर्म, जहाँ गुरुद्वारा न बना हो।

अब आपको एक बात बताएँ - मैं लन्दन में था, तो गुरुद्वारे में जैसे सब ने अपने-अपने भाव प्रकट किए, मैंने

भी भाव प्रकट किए। जब प्रसाद बंटने लगा, तो कुछ लोग नाराज हो गये कि चम्मच से प्रसाद मत दो, हाथ से दो। इसी पर झगड़ा हो गया, तलवारें निकल पड़ीं और कई लोग घायल हो गये। इन बातों से सिक्ख धर्म को बहुत नुकसान हुआ है। ऐसी भावनाओं से, जिसमें अपने ही भाईयों को, अपने ही धर्म को और अपने ही लोगों को नुकसान हो, इसको बिल्कुल नहीं करना चाहिए। मैं तो चुप बैठा रहा। उसमें तलवारों से 45 आदमी घायल हो गये थे। मैंने कहा, ये कृपाण, जो आप पहने हुए हो, इसलिए तो नहीं बनी कि अपने भाइयों के ऊपर उसका प्रहार करो। शक्ति का सदुपयोग संसार में किसी ने ऐसा नहीं किया जैसा गुरु गोबिंद सिंह जी ने किया। उनके एक-एक शब्द को देख लीजिए, सम्पूर्ण जीवन वे अधर्म के प्रति युद्ध करते रहे, पर कहीं पर भी वह झुके नहीं।

तो भाइयो और बहनो, मेरा आप से यही अनुरोध है और यही कहना है कि आपका धर्म सबसे महान है, सबसे सरल है और उसमें एक विचित्र चीज एक सरल से सरल चीज बताई गई है। सारे गुरु ग्रन्थ साहिब का सार है - जप के ऊपर। अब जितने दिन भी हम बोलेंगे, केवल यही विषय को लेकर बोलेंगे कि जप कैसे होना चाहिए? जप कितने प्रकार का होता है? जप कैसे किया जाता है? माला से जप करने में क्या लाभ है? मुँह से जप करने से क्या लाभ है? श्वास में जप करने से क्या लाभ है? और मन ही मन जप करने में क्या लाभ है? यह सब विचार हम आपके सम्मुख रखेंगे। अपने ही अनुभव नहीं, जिन जिन महापुरुषों के चरणों में बैठकर तीन वर्ष की आयु से लेकर अब तक जो भी मैंने सीखा है - ध्यान और जप के विषय में - मैं उसे आपके सामने रखना चाहता हूँ।

तो आज का विषय यह होगा कि जब आप जप करो तो आपको कैसे बैठना चाहिए? जैसे ही आप बैठेंगे वैसे ही आप श्वास लेंगे, कौन सा अच्छा तरीका है जो अच्छे ढंग से बैठने से और फिर श्वास लेने से आपका जप और ध्यान और गहराई में जा सकता है। सिर, गर्दन और रीढ़ की हड्डी को सीधा रखना चाहिए, जिस वक्त आप जप और ध्यान करें। यह एक विशेष प्रक्रिया होती है। वैसे तो हर वक्त हो सकता है, भाव हो, प्रभाव हो, आलस्य हो, हर वक्त जप हो सकता है लेकिन जो स्वस्थ हैं और जिन्हें बचपन से यह शिक्षा दी जाएगी तो उसमें यह होना चाहिए कि जप कैसे

हो? ध्यान कैसे हो? अब कहो कि ध्यान किस का करो। मेरा मतलब यह नहीं कि किसी मूर्ति का ध्यान करो, यह अर्थ नहीं। जप ठीक हो रहा है या नहीं हो रहा है, इसी का ही ध्यान रखना चाहिए कि मेरा मन इधर-उधर तो नहीं भटक रहा है, मेरा मन कितनी बार भटक कर इधर-उधर जा रहा है? यह जब विचार होने लगेगा तो धीरे-धीरे, मन अपने काबू आ जाएगा। तो सिर, गर्दन और रीढ़ की हड्डी को सीधा रख कर स्थिरता से बैठो। पैर कैसे रहें, कहाँ रहें, ये दूसरी बात है। उसी आसन में बैठना चाहिए और उसी का नित्य अभ्यास करते रहना चाहिए। रोज आसन बदल कर, कभी इधर, कभी उधर करके बैठना अच्छा नहीं। एक ही आसन में अभ्यास करना चाहिए। पहले अपने शरीर की गति को देख लें कि कौन सा आसन मुझे अच्छा लगता है, तो उसी आसन में बैठना चाहिए। 'स्थिर सुख आसन' - जिस आसन से सुख भी मिले और स्थिरता रहे।

बाइबल में भी एक बहुत सुन्दर शब्द आया है लेकिन उसको ईसाई लोग समझते नहीं। बाइबल में लिखा है (**Be stil and know that I am God**) स्थिर रहो और समझो कि मैं भगवान हूँ। बहुत बड़ी भारी चीज लिख दी है - **Be stil and know that I am God**। वह साधकों के लिए लिखा है कि हे साधक! जब तक तू स्थिर नहीं होगा, तब तक तू परमात्मा को नहीं मिलेगा। परमात्मा का मतलब क्या है? अपने से बाहर वाले प्रभु, जो चाँद, सूरज, सितारों से ऊपर रहता है, उसकी बात नहीं की। अपने अन्दर - निहित जो परमात्मा है, उसका अनुभव तुमको नहीं हो सकता। परमात्मा सर्वस्व है, सर्व व्यापक (**Omnipresent**), सर्व शक्तिमान (**Omnipotent**), सर्वज्ञ (**Omniscient**) है, सब जगह, सब में परमात्मा है, अपने अन्दर निहित परमात्मा को छोड़कर, जो इधर-उधर भटकते हैं, उनको मूर्ख कहा जाता है। इस तीर्थ पर जा रहे हैं, उस तीर्थ पर जा रहे हैं, यह तीर्थ हैं क्या? जहाँ-जहाँ सन्त गये और सन्तों ने निवास किया और अभ्यास किया, वह जगह तीर्थ हो गई। सबसे बड़ा भारी तीर्थ है - आप के अन्दर। अगर आप को कहीं जाना हो, तो अपने अन्दर प्रवेश कीजिए, गुरु नानक देव जी ने इसको बहुत पहले ही समझ लिया था। वे सन्यास धर्म में विश्वास नहीं करते थे क्योंकि सन्यास धर्म सब के लिए नहीं है, लोहे के चने चबाने हैं। इतनी गलतियाँ हो जाती हैं - हम ही से जीवन में इतनी गलतियाँ हुई कि जब याद आती हैं तो रोता हूँ।

इसलिए जहाँ हो, गृहस्थ जीवन में रहकर, पति-पत्नी अपना जीवन इस तरह से बनाएँ जैसे कि एक रथ के दो पहिये होते हैं और उन्हीं दो पहियों से रथ पूरा आगे को चलता है। यही गुरु नानक देव जी का सिद्धान्त गृहस्थ के लिए है कि गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुये ही परमात्मा का साक्षात्कार करो।

तीन महापुरुषों का मेरे जीवन पर बहुत भारी प्रभाव पड़ा है - गुरु नानक देव जी, महात्मा बुद्ध और एक मुझे ऐसे सन्त मिले थे, मैं तो आश्चर्यचकित हो गया, आज तक नहीं समझ पाया, ऐसा क्यों करते थे? इलाहाबाद की बात है। वहाँ पहले मैं पढ़ता भी था। तो संगम पर गया, जहाँ पर गंगा और यमुना मिलती हैं। तो सांय को मुझे एक सन्त मिला। तो बोले, इधर आ बे - तूने पहचाना नहीं मुझे? मैंने कहा, आप कौन हैं? बोले, जिसकी गुदड़ी तू उठा नहीं पाया था, वही हूँ मैं। मुझे याद आ गई कि एक बार हेमकुंट के रास्ते में - उस वक्त तो गुरुद्वारा नीचे नहीं बना था - मुझे एक सन्त मिले थे। उनका नाम था - गुदड़ी वाले बाबा, पर अभी तक मुझे सिक्खों में किसी भी धर्म के किसी मनुष्य को मैंने नहीं देखा जिसको पूरा गुरु ग्रन्थ साहिब जबानी याद हो। वे लेट जाते थे और पूरा ग्रन्थ साहिब बोल देते थे **by heart**। और यह रोज का कार्य था उनका - पाठ करने का, इतनी तेजी से बोलते थे वे, इतनी जल्दी-जल्दी बोलते थे। उस महापुरुष की भी मेरे जीवन पर बहुत बड़ी एक छाप पड़ी। तो उन्होंने कहा ये लोग बहुत तंग करते हैं, मेरे शरीर पर ही लोगों का ज्यादा ध्यान है, सुबह से ही खिलाना, पिलाना - बहुत तंग आ गया तो मैं चला आया - इलाहाबाद में। यहाँ कोई पहचानता नहीं, लोग समझते हैं - पागल है। पागलों की तरह बोलता हूँ, कोई मेरी बात समझता नहीं बेटा, और मैं भी यह जानबूझ कर करता हूँ। तुम को पहचाना इसलिये तुमको बुला लिया।

ऐसे भी हमारे भारत में महापुरुष हैं जिनकी कृपा से हम लोग, हमारा भारतवर्ष चलता है। हमारा भारतवर्ष किसी राजनीतिज्ञ के आधार पर नहीं चलता। यह तो ईश्वर की कृपा के ऊपर चलता है, सन्तों की कृपा पर चलता है। तो अब मैं आपसे बात करूँगा। मेरे विचार में हमारे भाषण न हो कर एक साधना की बातचीत हो तो अच्छा है। मैंने कहा कि सिर, गर्दन और रीढ़ की हड्डी को सीधी रखकर बैठने का अभ्यास करो और धीरे-धीरे आपको यह लगेगा, इतना आप न सोचें पहले कि कितनी देर तक बैठना है, समय न देखा करो।

जितनी देर तक आपका मन खुश रहे, प्रफुल्लित रहे, समय और आसन, दो चीजों को प्रबल प्रभाव होता है। ठीक समय पर और एक ही आसन पर, जो आपको पसन्द हो - वह करें। यह जो सीमा है ऊपर की सीमा और नीचे की सीमा, इनको समेट लेना ही अच्छा है। आप देखेंगे - जब आप बैठेंगे, किसी बच्चे को बिठा कर और एक कैमरा फिट करके देख लीजिए, हमने वैज्ञानिक निरीक्षण किया - इन चीजों को। तो पहले जिसको भी आप, किसी को भी - जानवर को लें, मनुष्य को लें आप अनुशासित करेंगे, संयम में रखेंगे तो उसके अन्दर संयम के खिलाफ एक चीज पैदा हो जाती है - मुझे क्यों संयम में रखा जा रहा है? आप शरीर को जब अनुशासित करते हैं तो शरीर चुपचाप बैठे, तो कभी गर्दन ऐसे हो जायेगी, कभी वैसे हो जायेगी, कभी टेढ़ी हो जायेगी। यह इसलिए होती है कि शरीर को हमने अनुशासन में नहीं किया है। शरीर को स्वस्थ बनाना ही पर्याप्त नहीं, किसलिये स्वस्थ हो शरीर? आपने सोचा होगा न? एक महात्मा आये और कहने लगे कि हम तो पानी पीते हैं। तो मैं अपने गुरु जी के पास गया मैंने कहा, 'महाराज! आप से भी ऊँचा एक सन्त आया हुआ है जो कहता है, हम पानी पीते हैं बड़ी जोर से हँसे।' बोले, 'अवे! मछली भी तो रोज पानी पीती है, पानी ही तो पीती है, और क्या पीती है।' इस तरह के बाहरी आचरण से, पाखण्डों से भैया, कहीं कुछ नहीं होता - मेरा जो **observation** है तो जब आप ने देखा कि कुछ काल तक ये आश्चर्य अशान्ति (**disturbances**) जो शरीर में हैं, ये खुद ही समाप्त हो जाते हैं। आपने सोचा कुछ भी हो, सबसे महान चीज आपके जीवन में एक है, आपके अन्दर है - संकल्प शक्ति। संकल्प शक्ति (**determination**) पक्का इरादा। मैं करूँगा, मुझे करना है, मैं कर सकता हूँ। एक पक्का इरादा होना चाहिए, एक संकल्प बना लेना चाहिए - कुछ भी हो संसार में, मैं इतना समय जरूर ध्यान करूँगा, जप करूँगा, हर वक्त करता रहूँगा लेकिन उस वक्त जप के सिवा कोई दूसरी चीज नहीं आने दूँगा। उस संकल्प शक्ति से इच्छा शक्ति बढ़ती है, आत्म-शक्ति बढ़ती है और उस आत्म शक्ति से जीवन कृतार्थ होता है।

'चलता'



गुरू गोबिंद सिंह रचित - जफरनामा

सन्त निरंजन सिंह नूर

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक मार्च, पृष्ठ - 55)

(91) मूल

ब तरतीबि दानिश ब तदबीरि तेग।
खुदावंदि देगो खुदावंदि तेग।

अर्थ - व तरतीब = विधि, दानिश = अक्लमन्दी, व तदबीर = ढंस से, खुदावंद = मालिक, देग = खुराक।

अनुवाद

अकल आसरे तूं धनी देग दा,
ते तदबीर करके धनी तेग दा।

तुम अपनी सयानप का प्रयोग करके तथा तलवार के जोर से देग व तेग के धनी हो।

(92) मूल

किह रौशन जमीर असत हुसनुल जमाल।
खुदावंद बखशिंदहए मुलको माल।

अर्थ - रौशन जमीर = तेज बुद्धिमान, हुसनुल = सुन्दर, ममुलको माल = जगीरें तथा दौलत।

अनुवाद

तूं रौशन-जमीरी दी जिंदा मिसाल।
जगीरों ते जर वंडणा तेरा कमाल।

तुम शानो-शौकत वाले भी हो तथा तेज बुद्धि वाले भी हो। तुम जागीरों तथा दौलतों के मालिक भी हो तथा इसे बाँटते भी हो।

(93) मूल

कि बखशिश् कबीर असत, दर जंग कोह।
मलाइक सिफत चूं सुर्या शकोह।

अर्थ - कबीर = बड़ा, कोह = पहाड़, मलाइक = फरिश्ते, सुरयां = सितारा, शकोह = शान।

अनुवाद

तूं दानी बड़ा, रण 'च परबत अडोल।
फिश्ते दे गुण, शान उँच तेरे कोल।

तुम बड़े दानी भी हो तथा युद्ध में पर्वत की भांति अडोल भी। तुम्हारे अन्दर फरिश्तों की सी विशेषताएँ हैं तथा

तुम ऊँची शान वाले भी हो।

(94) मूल

शहनिशाहि औरंगजेब आलमी।
किह दाराइ दौर असत, दूर असत दी।

अर्थ - औरंग = तख्त, जेब = सोभा, आलमी = संसार का, दाराइ दौर = जमाने का मालिक, दी = धर्म।

अनुवाद

औरंगजेब तूं शहिनशाह खलक दा,
बड़ी दूर है दीन तों पर खड़ा।

औरंगजेब! भले ही तुम सारे संसार के शहशाह हो और मौके के मालिक भी हो लेकिन तुम दीन (धर्म) से बहुत दूर हो।

(95) मूल

मनम कुशतनम कोहयाँ पुर फितन।
किह उ बुत प्रसतंदो मन बुत-शिकन।

अर्थ - कुशतनम = मैं मारता हूँ, कोहयाँ = पहाड़ी राजागण, पुरफितन = शरारती, बुत शिकन = मूर्तियों को तोड़ने वाला।

अनुवाद

पहाड़ी तिरें यार ने तेरी छाँ,
इह बुत-पूज ने ते मैं बुत-तोड़ हौं।

मैं शरारती पहाड़ी राजाओं को ठीक करने वाला हूँ क्योंकि वे मूर्तिपूजक हैं और मैं मूर्तिभंजक हूँ। (वास्तव में यह शेयर औरंगजेब पर एक कटाक्ष है कि मूर्तिपूजक पहाड़ी राजा उसके मित्र हैं)

(96) मूल

बबीं गरदशि बेवफाईए जमाँ।
पसे पुशत उफतद रसानद जयाँ।

अर्थ - बबीं = देखो, जमां = जमाने की, पसे पुशत = पीछे, रसानद = पहुँचाता है, जयां = हानि।

अनुवाद

हाँ वेखीं, जमाना बड़ा बेवण।
इह जिस पिछे जद पै गिआ, लै गिआ।

बेवफा जमाने के चक्कर को देखो कि वह जिसके भी पीछे पड़ता है उसे हानि ही पहुँचाता है।

(97) मूल

बबी कुदरति नेक यजदानि पाक।
कि अज यक ब दिह लक रसानद हलाक।

अर्थ - पाकि = पवित्र, अज = से, यक = एक, दिह लक = दस लाख, हलाक = मरवा देना।

अनुवाद

ते रब पाक दा तूं किशमा वी वेख,
जो दस लख नूं मरवाए इक तों ही वेख।

तुम नेक तथा पवित्र परमात्मा के रंग को भी देखो कि जो केवल एक व्यक्ति के द्वारा भी दस लाख लोगों को मरवा देता है।

(98) मूल

चिह दुश्मन कुन्द मिहरबान असत दोसत।
कि बखशिंदगी कारि बखशिंदह ओसत।

अर्थ - कुन्द = करना, असत = है, कार = कार्य, बखशिन्दगी = बख्शा देना।

अनुवाद

विगाड़ेगा की उस दा दुश्मण शैतान,
बणे जिस दा मित्र खुदा मिहरबान।

यदि परमात्मा मित्र कृपावान हो तो फिर दुश्मन किसी का क्या बिगाड़ सकता है क्योंकि उस कृपावान परमात्मा का कार्य ही कृपा करना है।

(99) मूल

रिहाई दिहो रहिनुमाई दिहद।
जबाँ रा ब सिफत आशनाई दिहद।

अर्थ - रिहाई = मुक्ति या आजादी, दिहद = देता है, सिफत आशनाई = प्रशंसा करने की कला।

अनुवाद

रिहाई करे, राहनुमाई करे,
अते जीभ दे साहीं अंम्रित भरे।

परमात्मा मुक्तिदाता है और वह मार्ग दिखाता है तथा जुबान को नेक बातें करने का शौक पैदा करता है।

(100) मूल

खसम रा चू कोरो कुन्द वकति कार।
यतीमाँ बिरुँ बुरद बेजखम खार।

अर्थ - खसम = दुश्मन, कौर = अन्धा, वकति कार = काम के समय, बिरुँ बुरद = बाहर लाता है, बेजखम = बिना तकलीफ के।

अनुवाद

करे वैरी (नूं) अंनहा जे मौका बणे।
नमाणे दी र्खिआ दा हीला बणे।

परमात्मा मौका पड़ने पर वैरियों को अन्धा कर देता है और गर्वरहित लोगों को जरा सी भी आंच नहीं आने देता है।

(101) मूल

हर आँ कश किजू रासतबाजी कुन्द।
रहीमे बरो रहिमसाजी कुन्द।

अर्थ - रासतबाजी = सच्चाई, रहीम = परमात्मा, बरो = उस पर।

अनुवाद

हमेशा ही जो सूचा सौदा करे,
करीम ओस ते किउं ना किरपा करे।

जो मनुष्य सत्य के मार्ग पर चलता है कृपावान परमात्मा उस पर अपनी कृपा करता है।

(102) मूल

कसे खिदमत आयद बसे दिलोजाँ।
खुदावंद बखशीद बर ऊ अमाँ।

अर्थ - कसे = यदि कोई, बसे = बहुत खिदमत, आयद = सेवा में आना, बखशीद = प्रदान करता है।

अनुवाद

जो तन मन तों उहदी शरन आ गिआ,
उह उहदी पनाह दा फखर पा गिआ।

जो भी मनुष्य दिल से परमात्मा की सेवा में लग जाता है, परमात्मा उसे अपनी शरण में ले लेता है।

(103) मूल

चिह दुश्मन किह जाँ हीलासाजी कुन्द।
अगर रहिनुमा बर वै राजी शव्द।

अर्थ - चिह = क्या, हीलासाजी = शरारत, बर वै = उस पर।

अनुवाद

जे भगवान दा हथ सिर 'ते रहे,
ताँ वैरी दी भूज-दौड़ की कर सके?

यदि पथ-प्रदर्शक परमात्मा किसी पर प्रसन्न हो तो फिर दुश्मनों की साजिशें उसका क्या बिगाड़ सकती हैं?

‘चलता’



नौवें रत्न - सन्त ईशर सिंह जी महाराज, राड़ा साहिब

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक मार्च, पृष्ठ - 60)

अन्तिम प्रकरण

इस बार कुछ न कुछ अन्तर प्रत्येक व्यक्ति अनुभव करता था कि सन्त महाराज का हर प्रकरण वैराग, विरह, मौत का भय तथा फिर सन्त जनों के लिये जीवन मरण, एक ही दरिया के दो किनारों के समान थे। जब भी कोई प्रकरण शुरू करते हृदय के अन्दर दबा हुआ बचपन का प्रकटीकरण तथा फिर तुखारी राग के वह बारहमाह की तुकें, जो सदियों से बिछुड़ी आत्मा का पति से उत्तम संयोग होते समय दशा का वर्णन होता है। और तो नहीं पर सरदार प्रीतम सिंह जी झम्मट जिन्होंने जीवन की सारी रास गवाँ कर, सतपुरुषों की सेवा ही जीवन आधार बना लिया था, सन्त जी महाराज की रोज़ाना क्रिया पर उनके हर इशारे को नोट किया करते थे। साऊथहाल के अन्तिम दीवान के उपरान्त जो अमृतपान करने की अपील की थी, वह इस प्रकार थी।

‘गुरसिखो’ धन्य थी वे महान पवित्र हस्तियाँ और परम सिख, जिन्होंने शीश देकर, गुरु से उनकी आत्मा से प्रकट हुए अमृत जो बाणी के साथ ही खण्डे का स्पर्श ले बैठा था, को प्राप्त किया। असल में वह स्पर्श कलगीधर जी के कर कमलों को स्पर्श करके, कमलों में बहने वाली वह धारा है, जिसने हर एक, उस हृदय को सुरजीत तथा पावन कर दिया है, जिसके अन्दर उसका प्रवेश हो गया। गुरसिखो! हमारे बुजुर्ग साहिब भाई दया सिंह जी थे, जिनसे बाबा शोभा सिंह जी वरोसाये और उनसे भी प्रचण्ड शक्तिवान बाबा साहिब सिंह जी बेदी का प्रकाश हुआ। बाबा साहिब सिंह जी ने बाबा भाग सिंह कुरी के हृदय में नाम की बत्ती जलाई और वह पावन प्रचण्ड ज्योति बाबा साहिब सिंह जी के हाथों ही बाबा बीर सिंह जी के पास पहुँच गई। बाबा बीर सिंह जी ने साहिब खुदा सिंह जी, बाबा महाराज सिंह जैसी आकर्षण शक्तिवान हस्तियों को जन्म दिया। बाबा महाराज सिंह जी से बाबा राम सिंह जी जैसे त्याग मूर्ति, देश भक्त तथा प्रभु महान बली बाबा राम सिंह जी प्रकट हुए। उसी ही त्यागी, तपस्वी तथा कर्मवीर तपस्वी की गोद में से महान साधना सम्पन्न बाबा करम सिंह जी होती मरदान ने आत्म ज्योति

को जगाया। वह युक्ति, शक्ति तथा पावन आत्मा ज्ञान के प्रचण्ड प्रवाह को, सन्त जी महाराज सन्त अतर सिंह जी रेरू साहिब ने महान तप करके लोगों को प्रकट किया। साध संगत जी! यह वह उत्तम ज्ञान अमृत तथा शब्द अमृत फिर अब हृदय अमृत को प्रकट करना है। हम और कुछ नहीं कहते, केवल यही कह सकते हैं, हाँ गुरसिखो! यह हमारी अन्तिम अपील है, फिर पता नहीं कब इस महान स्थान पर आना है या नहीं पर जो मनुष्य सतगुरुों का वह अमृतपान करे, समझो वह सदा के लिये हमारे साथ जुड़ जाता है।’

यह मन से निकली दर्द तथा वेदना भरी अपील का प्रभाव था कि दसवें दिन दो अढ़ाई सौ सज्जन गुरु के जहाज पर चढ़े, जिनमें से अधिकतर वे थे जो सिखी से बहुत दूर तथा कई नास्तिक भी हो चुके थे। कोई तो ऐसा कहते सुने गये कि हम तो भाग्यशाली हैं, जिन्हें भाई दया सिंह जी की सम्प्रदा के हाथों अमृत मिल रहा है जिन्होंने शीश देकर गुरुदेव से महान अमृत की दात प्राप्त की थी।

इसके पश्चात सन्त जी महाराज सटीवनेथ चले गये, रिहायश सरदार जगदेव सिंह के गृह में रखी। दीवान रिचन टाऊनहाल में सजाये जाते थे। इसके पश्चात बैडफोर्ड में तीन दीवान सजाये। इस स्थान पर भाई सेवा में मिलकर काम करते जो धार्मिक तौर पर सिख नहीं थे। पर सन्त महाराज जी की हस्ती का यह प्रभाव था कि कई कट्टर आर्य समाजी भी संगत किया करते थे और कि वह श्रद्धा से सेवा में सहायक होते थे। इस स्थान पर माझा, मालवा, दोआबा, हर स्थानों के भाई रहते थे जो बिना किसी भेद भाव के सन्त जी महाराज की सेवा तथा फिर कथा कीर्तन का आनन्द लूटा करते थे।

बैडफोर्ड के पश्चात लोटन टाऊन हाल में तीन दीवान सजाये। स. प्रीतम सिंह ने ही साथियों सहित प्रबन्ध किया था।

ईस्ट लन्दन को गये

स्टीवनैब से 15 दिन हिचन बैडफोर्ड लूटन में दीवान सजाकर वापिस ईस्ट लन्दन स. ईशर सिंह कलसी रामपुर के

गृह पहुँचे। स. प्रीतम सिंघ स्पष्ट चश्मदीद सेवकों का यह कथन है कि वे सन्त महाराज जी को देखकर इतना मस्त तथा खुश था कि संसार की सारी क्रिया ही भूल गया था। यह सिंघ रामपुर का वासी है जो सन्त जी महाराज का गुरु स्थान भाव बड़ों का घर है। वहीं से ही सन्त जी महाराज को पावन नाम तथा उसकी शक्ति प्रदान हुई थी। वह, उनका परिवार इस तरह सेवा किया करता था, मानो कोई महान खज़ाना मिल गया हो।

बुलिच टान में दीवान सात दिन सजते रहे। यहाँ बढ़ोतरी यह हुई कि रामगढ़िया सिख भाईयों ने अपनी हिम्मत, मेहनत तथा रूपये खर्च करके, एक पुराना डासिंग हाल खरीदकर उसे दो मन्जिला तैयार किया और फिर उससे लंगर तथा रिहायश का बढ़िया प्रबन्ध किया था।

इसके पश्चात ईस्टन होम टाऊन में दीवान सजाये। यहाँ अन्तिम दिन अमृत पान करने वाले कई ऐसे भी थे जो कुछ दिन पहले तक सिखी तथा केशों वाले सिधों का मज़ाक किया करते थे। आम कहावत हो गई कि भक्तमन्द से नरम विचार के सिख तो हर स्थान पर अच्छे बन सकते हैं पर नासितक और पत्थर केवल सन्त ईश्वर सिंघ जी ने ही पार उतारे हैं। वे लोग जो शाम के समय कल्ब या शराब खाने में जाते थे के चरण भी अब धर्मशाला की ओर चढ़ते थे। सैकड़ों लोग मांस, शराब से तौबा कर गये। यह भी करामात ही समझो।

ग्रेट यार्ड टाऊन

दिन बीतते जा रहे थे। इन्हीं दिनों में सन्त महाराज जी ने काम अधिक तेज़ कर दिया। जो कोई भी प्रार्थना करता, वह उसे स्वीकार कर लेते, शायद फिर समय ही न मिले। तीन अगस्त को ग्रेट यार्ड टाऊन के गुरुद्वारे में सात दीवान सजे। यह गुरुद्वारा एक पुराना चर्च खरीद कर बनाया है। धर्म एक धारा है, पूजा के साधन तो बदलते ही रहते हैं, परन्तु प्रारम्भिक और आधारभूत गुण एक जैसे ही होते हैं।

इसके पश्चात रौं चैस्टर कैम्प के लिये समय नहीं बचता था, क्योंकि दस अगस्त का दिन विश्राम करने का था। अगले दिन से वुलवर हैपटन पहुँच कर, सरदार सौदागर सिंघ के गृह में निवास रखते हुए, वहीं पर ही तेरह दीवान सजाने थे। परन्तु रौं चैस्टर कैम्प के प्रबन्धकों ने नम्रता सहित तरले किये। सन्त जी महाराज ने अपना आराम करने वाला दिन भी इन प्रेमियों को दे दिया और शाम का दीवान वहीं सजाया था।

इस नगर के प्रेमी सरदार किरपाल सिंघ जी ने दीवान की समाप्ति पर कहा था, “आज दुनियाँ में स्वार्थ का दौर चल रहा है। प्रत्येक मनुष्य अपनी स्वार्थ पूर्ति तथा जरूरतें पूरी करने के लिये दूसरों की खुशी तथा आराम लूटने में लगा हुआ है। मनुष्य ने अपनी जरूरत और स्वार्थ को इतना प्रबल और प्रमुख बना लिया है कि मानवता की अन्य आवश्यकताएं तथा उन्नति पीछे रह गई है। परन्तु धन्य हैं सन्त जी महाराज, जिन्होंने संगतों की प्रार्थना स्वीकार करके अपना सुख और आराम भी संगतों के अर्पण कर दिया।”

यह सुनते ही सिख संगतों में कई सज्जनों के नेत्र सजल हो उठे और कुछेक ने तो दीवान के अन्दर ही अपने गुनाहों की क्षमा मांगी। सन्त महाराज जी ने इतना ही कहा, “गुरुसिखो! समय किसी को माफ नहीं करता। हमारे पास मालिक का दिया गया जो समय है, उसका अधिक से अधिक प्रयोग करना और उसे सफल करना चाहते हैं। क्या पता समय फिर और काम करने का अवसर ही न दे। यह शरीर संगतों की भेंट है और हम संगतों की सेवा हित अधिक से अधिक समय देना चाहते हैं, ताकि कल को तुम याद करो कि कोई यहाँ हमारे पास बैठकर हमारे साथ वचन किया करता था।”

वुलवर हैपटन को जाने की तैयारियों ने ईस्टर्न लन्दन के प्रेमियों को इतनी कमी अनुभव करवाई कि कई प्रेमी नेत्रों से अश्रु बहाये जा रहे थे। सरदार ईश्वर सिंघ कलसी के परिवार के कई सज्जन तो रोने से रूकते ही नहीं थे। कलसी साहिब अनुभव करते थे कि पता नहीं उनकी आत्मा क्यों कहती है कि इन्हें हैपटन जाने से रोक ले; अन्यथा फिर समय नहीं आयेगा।

सरदार ईश्वर सिंघ कलसी के घर से चले जाने के बाद, एक बहुत बड़ा काफिला सरदार सौदागर सिंघ रूमी की कोठी 61 क्रोडर रोड पर वुलवर हैपटन आ पहुँचा। सारे परिवार ने पूर्ण भावना तथा आदर सहित सन्त महाराज का आदर किया। सन्त जी महाराज ने आराम छोड़कर दूसरे ही दिन 13-8-1975 ऐक्टेवीज़ सैन्ट्रल हाल, मैडर स्ट्रीट में दीवान आरम्भ कर दिये।

‘चलता’

गिआनी मेहर सिंघ जी रचित पुस्तक
नौ रतन में से धन्यवाद सहित



गुरु नानक आगमन (श्री गुरु नानक चमत्कार)

पद्म भूषण डा. भाई वीर सिंह जी

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक जनवरी, पृष्ठ - 56)

19. अशीं ज्योति तथा श्री नानक मता

1. नदी 'ब्रह्म' दी आई गुसाँईं मेरे!
धुक एस तौ पार लंघा साँईंआँ!
साडे फेड़िआँ वल ना तूक साँईंआँ!
सानं खेड़िआँ विच पुचा साँईंआँ!
कोई घुट अगम दी चड़ी अंदर!
जोर थुकिआँ आपणा ला साँईंआँ!
करम बुरे, पर करम कर आपणा तं,
मुशकाँ ब्रह्मीआँ देह खुला साँईंआँ!

दिन व्यतीत हो चुका है, दिन का राजा (सूर्य) पश्चिम दिशा में जाकर धरती पर हसरत भरी निगाहें डालता हुआ धरती के पीछे छिप गया है। सूर्यास्त होने की लालिमा दिखाई पड़ रही है तथा धरती पर एक सफेद-सफेद प्रकाश पड़ रहा है। अभी पूरी शाम नहीं हुई है लेकिन कुछ समय तक होने वाली है। एक जंगल सा है लेकिन कुछ दूरी पर आबादी भी दिखाई पड़ रही है लेकिन उसे आबादी भी क्या कहा जाए? क्योंकि वहाँ न तो कोई बच्चा दिखाई पड़ रहा है न कोई स्त्री और न कोई पुरुष ही दिखाई पड़ रहा है, केवल झोंपड़ियाँ हैं, कुटियाँ हैं और कहीं-कहीं पर कानों में कुण्डल धारण करने वाले योगियों के आसन हैं, धूनियाँ हैं और चबूतरे हैं।

कुछ दूरी पर एक पीपल का वृक्ष है और उसके चहुँओर एक पुराना कच्चा सा चबूतरा बना हुआ है। पीपल का वृक्ष खड़ा है लेकिन उसके पत्ते सूखे हुए हैं और वहाँ पर उस वृक्ष के नीचे कोई बैठा हुआ है। ओह! कोई? हाँ, 'कोई' कहने में तो अपमान वाली बात है लेकिन जिनकी कुटिया के पास में वह बैठा है, वे सब आपस में यही बातें कर रहे हैं कि 'कोई' आया है। इस उजाड़ वातावरण में एक और सुन्दर व मनमोहक शरीर आ रहा है और वह उन सुन्दर 'कोई जी' के सामने आकर खड़ा हो गया है। वहाँ पर 'कोई जी' के चरणों में उसने कुछ विनितियाँ कीं जिनका सार उपर्युक्त पंक्तियों में है। इस दिल के दर्द को सुनकर सुन्दर-सुन्दर अशीं 'कोई जी' मुस्कराए -

मरदाना! जब मन बँध कर अपने घर की तरफ जाता है तो पहले कोई न कोई कारण अवश्य होता है। उस कारण को ढूँढ़ें, जिस प्रकार से प्याज के पत्तों की परतें खोली जाती हैं, उसी प्रकार से उस 'कारण' की पड़ताल करें। इसके बाद उस कारण को विचार के तराजू पर तौलें। यदि हम उसे ठीक

तरह से तराजू पर तौल लें तो कई बार उसी से यह बँधन दूर हो जाता है।

मरदाना - महाराज जी! कई बार तो ऐसा करने से भी मंजिल नहीं मिल पाती है।

श्री गुरु नानक देव जी - फिर कोई न कोई कारण अगम्य (परमात्मा) का होता है लेकिन वह होता अन्दर ही है। अपने द्वारा किए गए कर्मों को लोग भूल जाते हैं लेकिन कर्मों के निशान तो हमारे अन्दर ही मौजूद रहते हैं, जो कि हमें रह रहकर तंग करते रहते हैं। किए गए कर्मों के कारण ही हमें दुख या सुख मिलता है। वह चाहे हमें आज मिले या कल या फिर हमारे अन्तिम समय में हमें प्राप्त हो। इसकी औषधि है नाम, कीर्तन गुरवाणी का पाठ, अरदास, सत्संग, दान, स्नान, सुन्दर-सुन्दर नदियाँ, वन, नहरों, पर्वतों के प्राकृतिक दर्शन, ब्रह्ममुहूर्त के नाद, पक्षियों की चहचहाट तथा उनके मीठे-मीठे एक, दो, तीन सुर, राग व स्नान। हाँ, नाम-वाणी का अभ्यास तथा किसी प्राकृतिक सौन्दर्य तथा प्रकृति के चाव व उल्लास का स्पर्श लेकर खिल जाना।

मरदाना - अब मेरे साथ क्या हुआ?

गुरु जी - क्या तुम्हारा कहीं से अनादर हुआ है? वहाँ तुमने आगे से कोई अनादर नहीं किया या तुम कर नहीं सके, फलस्वरूप तुम्हारे अन्दर असहनीय अपमान की पीड़ा मुखरित हो गई है। दूसरी बात यह है कि तुम्हारे मन ने इसके कारण की तरफ रुख नहीं किया और तुम्हारी याददाश्त में भी सहायता नहीं की। यही कारण है कि तुम्हारी नाम वाली खिली हुई सुरति दब गई है और साथ ही तुम्हारे मन का उल्लास समाप्त हो गया।

मरदाना - आपने बहुत ही सुन्दर बात कही है, मेरे साथ यही बात घटित हुई है।

गुरु जी - कैसे?

मरदाना - पातशाह जी! मैं सारे योगियों के पास गया हूँ, किसी ने आग की एक चिंगारी भी नहीं दी है, दो लकड़ियाँ भी नहीं दी हैं, पाव भर खाद्यान्न तो किसी ने क्या देना था। कहते हैं कि हम तो त्यागी हैं। इसके साथ ही वे मधुर भाषा का भी प्रयोग नहीं करते हैं बल्कि क्रोधावेश में ही बात करते हैं। पातशाह! वे भूखे भी नहीं बैठे हुए हैं, बल्कि पदार्थ भी उनके पास पड़े हुए हैं? इनसे तो गृहस्थी अच्छे हैं, उनके पास यदि कोई अतिथि आता है तो वह हर सम्भव उनकी खातिरदारी करने की कोशिश करता है और यदि कोई त्यागी या साधू उसके पास कोई आ जाए तो वह

एक अंजुली आटा तो दे ही देता है।

गुरु जी - फिर मरदाना! यही तो हम लोग देखने व सुधारने के लिए चले हुए हैं। तुमने दुख क्यों माना? जब दुख तुम्हारे अन्दर आ गया तो तुम्हें उसकी पीड़ा हुई, जब पीड़ा हुई तो नाम गया, यदि नाम नहीं गया तो उल्लास गया और जब उल्लास ही चला गया तो फिर जीवन क्या रह गया? फिर तो केवल रसायनिक जीवन ही रह गया। जिस प्रकार से चूल्हे में जलने की क्रिया हो रही है, उसी प्रकार से शरीर में अन्न के जलने की क्रिया हो रही है। इसी प्रकार से जलने की क्रिया धरती के अन्दर भी हो रही है। यदि हाथ लगाओ तो पत्थरों के अन्दर भी गर्माहट महसूस होती है लेकिन केवल जलने की क्रिया शाश्वत जीवन नहीं है। जीवों के अन्दर जो जलने की क्रिया हो रही है, वह जीवन के लिए गर्माहट उत्पन्न करती है। यदि किसी कारण से जीव के अन्दर से आग बुझ गई तो फिर वहाँ पर जीवन दिखाई ही नहीं रहता है। वृक्ष, पशु, पक्षी, मनुष्य का मामूली जीवन जो है, वह एक प्रकार से जलने की ही क्रिया है। जलने के सहारे ही जीवन चलता है।

दरअस्त जीवन में उल्लास आना चाहिए क्योंकि यदि जीव उस उल्लास में खिलता है तो ही उसका उल्लासमयी जीवन हो पाता है। यदि वह नहीं खिलता है तो केवल उसके अन्दर जलने की क्रिया ही हो रही है। यह उल्लास का जीवन शाश्वत उल्लास का जीवन बन जाता है। मनुष्य जीवित रहे या मर जाए, उल्लास वालों का उल्लास साथ ही रहता है। जो वास्तविक ईश्वरीय उल्लास में आ गया वह तो प्रत्येक क्षण उल्लास में रहता है। इसलिए हे मरदाना! साईं के प्यार में खिले रहना ही वास्तविक जीवन है।

मरदाना - धन्य है आपकी समझ तथा धन्य है आपके द्वारा कही गई वार्ता। यह ड्रम (स्वयं को सम्बोधन) कितने लम्बे अर्से से आपके साथ है, समझता भी है और हाथ-पैर भी काफी मारता है, लेकिन फिर भी पैर फिसल ही जाता है। आपके वचन तो दिव्यानन्द वाले हैं और दिव्य राग हैं। पातशाह जी! अब मैं उल्लास में आ गया हूँ, मेरे नेत्र खुल गए हैं, मेरा रक्त परिभ्रमण भी अब सामान्य हो गया है तथा नाम की तार भी जीवित हो चुकी है आपकी अपार कृपा हो गई है।

‘सति सुहाण सदा मनि चाउ’ आपने कितनी बार फुरमाया है लेकिन मुझ गंवार के यह नुक्ता पल्ले ही नहीं पड़ता है। (ठण्डे व लम्बे श्वास भरते हुए) पातशाह! यह क्या बात होती है कि जब कभी किसी के मन को कोई दुखानुभूति होने के बाद जब सुखाभास हो तो फिर ठण्डे श्वास आने लगते हैं?

गुरु जी - मरदाना! तुम्हें बताया था कि जागृत सुरति वाले पुरुष नाम में ही जीते हैं, उनके अन्दर नाम का रंग होने के कारण वे उल्लासयुक्त रहते हैं। इस उल्लास को सहन कर पाना कठिन होता है क्योंकि यह अजर वस्तु है। सहन न कर पाने के कारण व्यक्ति से गलितियाँ प्रायः हो ही जाती

हैं और गलितियों का प्रतिफल यह होता है कि व्यक्ति के अन्दर घुटन सी उत्पन्न हो जाती है, फलस्वरूप घुटन वाला या बंधा-बंधा मन फिर अपने आपको ही खाता हुआ प्रतीत होता है। जब जागृत सुरति वाले पुरुषों की यह बंधी हुई प्रवृत्ति पुनः खुल जाती है, यानि कि उनके अन्दर नाम का शाश्वत रौ पुनः प्रवाहित होने लगती है, तो उस समय मरदाना! फिर ऐसा आभास होता है कि मानो उनकी सुरति पर्वतों के भार के नीचे से निकल रही हो और फिर वह सुख के श्वास लेती है। वह ठण्डे श्वास सुखानुभूति के तथा पुनः मन शान्त होने के लक्षण होते हैं। ऐसा हो जाने के बाद मन के अन्दर पुनः उल्लास भर जाता है और जीवन शक्ति पुनः अपने उत्कर्ष पर संचरित होने लगती है। इसलिए तुम सावधान रहा करो।

मरदाना - पातशाह! मुझे सावधान तो आपकी कृपा ही रख सकती है अन्यथा यह ड्रम तो बार-बार गिरावट की तरफ ही चला जाता है। अब देखो! आप मुझे अभी उल्लास में लेकर आए हो और अभी मुझे यह ख्याल आ गया है कि आगे रात आ रही है, ठण्ड भी बहुत है, रात कैसे कटेगी?

गुरु जी - मरदाना कभी तो ख्यालों के दरिया से पार भी हो जाया करो। अब एक पल के लिए ख्यालों को छोड़ दो और सिमरन के घर में आ जाओ। अपने अन्दर दृष्टिपात करो, ख्यालों को रोक कर उस परम पिता का नाम स्मरण करने लग पड़ो। ऐसा सोचो कि जिसका नाम रसना के द्वारा ले रहा हूँ उसी के साथ मैं जुड़ रहा हूँ। आ जाओ! अपने अन्दर आ जाओ! एक क्षण के लिए ही आ जाओ और इस प्रकार से सोचो कि तुम अपने परम पिता के साथ जुड़ रहे हो। स्वयं को इस रंग में रहने दो। अपनी सोच-विचार को कुछ समय के लिए तिलांजलि दे दो, उद्यम करके नाम का स्मरण करो रात स्वतः ही बीत जाएगी। इसी को कहते हैं साईं के साथ ‘योग’ या ‘मिलाप’। अतः अब तुम इस मनःस्थिति में जाकर यह विचार करो कि जिसके (परमात्मा के) साथ जुड़े हैं, अब रात काटने के बारे में फिक्र उसे है। मरदाना! कभी तो चिन्ताओं को छोड़कर, ‘टिकाव’ के घर आकर देखो कि परमात्मा की प्रकृति क्या करती है? तुम थोड़ा-बहुत फिक्र तो करो, मना नहीं है लेकिन बुद्धि के माध्यम से कुछ प्रबन्ध भी करो लेकिन एक तो नाम को मत छोड़ना, दूसरा यदि तुम्हारे द्वारा किए गए प्रयास सफल नहीं हुए तो फिर तुम उनका दुख नहीं मानना। यदि इस भाँति आगे बढ़ोगे तो फिर तुम्हारे अन्दर का उल्लास थोड़ा-बहुत बचा रहेगा। दूसरी तरफ यदि तुम अपने प्रयासों के विफल होने से उदास हो गए अथवा प्रयासों के सफल होने से अहंकार के अफारे में आ गए तो फिर आन्तरिक उल्लास समाप्त हो जाएगा। नाम को रौ बन्द हो जाएगी या अत्यन्त मद्धम पड़ जाएगी तो फिर सुरति में बन्धा पड़ जाना स्वाभाविक ही है। फिर तुम दुखी हो जाओगे। फिर तो सारी उम्र दुखों में ही बीत जाएगी, दिन में भी दुखी, रात में भी दुखी। फिर तो सारा संसार ही दुःख स्वरूप है। यहाँ पर दुख इसीलिए तो है।

‘चलता’

स्वामी राम जी के प्रेरणात्मक विचार (Inspired Thoughts of Swami Ram)

डा. स्वामी राम जी

अनुवादक - शमशेर सिंह 'कोमल'

(श्रृंखला जोड़ने के लिए देखें, अंक अप्रैल, पृष्ठ - 62)

मन के रहस्य तथा फुरमान

आधुनिक विज्ञान मन को जानने की कोशिश कर रहे हैं लेकिन वे केवल दिमाग को ही जान सके हैं। वास्तव में मन व दिमाग के अन्दर को समझने की नितान्त आवश्यकता है। मन एक शक्ति है जबकि दिमाग एक भौतिक तत्व है, कारक है, दिमाग उस शक्ति को प्रयोग करने का एक साधन है। भौतिक तत्व को वैज्ञानिक विधि से जानकर मन की शक्ति का ज्ञान नहीं हो सकता है अर्थात् उस शक्ति को नहीं जाना जा सकता है जो कि मन को चला रही है।

मन को जानने के मार्ग में बहुत सारी बाधाएँ आती हैं, सबसे पहली बाधा तो हमारी शिक्षा की विधि है, जो कि हमें यह नहीं सिखाता है कि मन एक सम्पूर्ण तत्व है। आज का मनोविज्ञान भी केवल चेतन मन को ही लेता है लेकिन मन को तुम टुकड़ों में बाँट कर उसके बारे में नहीं जान सकते हो। 'योग' को नियमबद्ध करने वाले पतंजलि बतलाते हैं कि मन केवल चेतन मन को जानकर ही नहीं जाना जा सकता है बल्कि मन को तो पूरा ही जानना पड़ेगा। वास्तव में चेतन मन तथा अचेतन मन दोनों को ही जानने की जरूरत है। दोनों पर महारत हासिल करने की जरूरत है। हाँ चेतन मन को जानना सरल है जबकि अचेतन मन को जानना कठिन है। दरअसल अपने अचेतन मन या अर्द्धचेतन मन को जानने के लिए हमें अपने अन्दर जाना पड़ेगा और अन्दर जाने का तरीका है - मैडिटेशन। जागृतावस्था, स्वप्नावस्था तथा सुषुप्तावस्था के बाद हम अचेतन अवस्था तक पहुँचते हैं जिसे कि तुरियावस्था या चतुर्थावस्था कहते हैं।

दुख इस बात का है कि मैडिटेशन के बारे में हमारी बहुत सारी गलतफहमियाँ हैं। ऐसा कोई जादू नहीं है जिसके द्वारा तुम मैडिटेशन सीख सकते हो। वास्तव में मैडिटेशन बहुत ही नियमबद्ध तरीके से सीखी जानी चाहिए। इस प्रकार की कोशिश तभी हो सकती है यदि पहले मन का सूक्ष्मावलोकन किया जाए तथा साथ ही इसे शिक्षा का एक भाग बनाया जाए। एक मिनट के लिए भी हमें यह नहीं सोचना चाहिए

कि यह नहीं हो सकता है। यदि पुरातन सिद्ध पुरुष यह कर सकते थे तो हम भी जरूर कर सकते हैं और हमें यह करने की जरूरत भी है। जब तक मन के बारे में लोगों को शिक्षा नहीं दी जाएगी तब तक समाज में द्वन्द्व रहेगा ही। यदि हम अपने आपको नहीं समझ सकते हैं तो फिर हम दूसरों को कैसे समझेंगे? यदि हम अपने मन के अन्दर ही रहेंगे तो हम दूसरों के साथ बातचीत कैसे करेंगे?

मनुष्य जाति ने विज्ञान तथा टेक्नोलाजी में बहुत तरक्की की है। हम धरती से चन्द्रमा पर चले गए हैं। सम्भव है कि हम एक आकाश गंगा से दूसरी आकाश गंगा पर चले जाएँ लेकिन हमारा सबसे लम्बा सफर तो हमारे अन्दर का सफर है। अभी तो हमने इस सफर को तय करना ही शुरू किया है। अपने अन्दर शान्ति को बनाना, धरती पर शान्ति को स्थापित करना आदि को हमें ढूँढ़ना पड़ेगा। यह तभी सम्भव हो सकेगा जबकि हम योगाभ्यास के माध्यम से मन के अस्तित्व से ऊपर उठ सकेंगे। केवल चेतना के ऊपरी स्तर पर ही पृथक-पृथक पक्षों का मिलाप हो सकता है। जब तक हम उस स्तर पर नहीं पहुँचते हैं, तब तक अन्दर और बाहर शान्ति हो ही नहीं सकती है।

शिक्षा में मैडिटेशन

मैडिटेशन दो प्रकार की होती है एक मैडिटेशन तो कहीं दूर, चुपचाप व किसी एकान्त जगह या गुफा में होती है। दूसरी मैडिटेशन दैनिक काम काजों को करते हुए होती है। इन दोनों में एकान्त वाली मैडिटेशन योगी के लिए उपयुक्त हो सकती है लेकिन समाज में रहकर वह लाभकारी नहीं हो सकती है, इसलिए हमें वही मैडिटेशन करनी चाहिए जिसे कि हम संसार में रहकर कर सकते हैं। हमें अपने अन्दर शान्ति को ढूँढ़ने की जरूरत है, बाहर नहीं। एक बार जब हम अपने अन्दर को शान्त कर लेते हैं तो फिर बाहर की कोई भी चीज हमें अशान्त नहीं कर सकती है। भले ही हम कितने ही कठिन व जटिल कार्य में व्यस्त क्यों न हों, हम शान्त ही रहेंगे।

सभी द्वन्द्व हमें मानसिक अशान्ति प्रदान करते हैं। यदि

किसी मनुष्य ने मानसिक सन्तुलन नहीं सीखा है तो वह स्वयं अशान्त तो रहेगा ही साथ ही वह दूसरों को भी अशान्त करेगा। मैडिटेशन के साथ बच्चों को यह शिक्षा देने की जरूरत है ताकि वे बड़े होने पर प्रत्येक मुसीबत का सामना समाचित होकर या मानसिक सन्तुलन रखकर कर सकें और अपना जीवन किसी भी मानसिक दबाव या तनाव से रहित होकर व्यतीत कर सकें। ये सारी हिदायतें और सारी शिक्षा अत्यावश्यक हैं और यह केवल हमारे लिए या केवल हमारी व्यक्तिगत समस्याओं को ही सुलझाने के लिए नहीं है बल्कि ये राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने के लिए भी आवश्यक हैं क्योंकि एक शान्त मन ही जटिल समस्याओं को सुलझा सकता है।

मैडिटेशन सीखनी

हमारी आज की जो शिक्षा पद्धति है यह केवल हमें नकल करना ही सिखाती है। यही उम्मीद की जाती है कि जो हमारे बड़ों ने किया है, वही हम भी करें, लेकिन इस प्रकार करने से नौजवानों के मन का विकास नहीं हो सकता है। यदि वे अपना विकास कर सकते हैं तो इसका केवल एक ही माध्यम है और वह है - मैडिटेशन। दुर्भाग्यवश, मैडिटेशन तो हमें सिखाई ही नहीं जाती है हमारी शिक्षा तो हमें केवल सोचना ही सिखाती है और सोचने से आगे यह जाना ही नहीं बतलाती है, फलस्वरूप हम सोच विचार में ही उलझे रहते हैं और इसीलिए हमारा मानसिक तनाव बढ़ता जाता है। हमारे मन को केवल एक तरह से सोचने के लिए सिखाया गया है, जिस कारण से हम प्रत्येक समस्या का समाधान केवल सोचने में ही ढूँढ़ते हैं और जिस कारण से और भी अधिक परेशानियाँ और उलझनें उत्पन्न होती जाती हैं। इसे ठीक करने के लिए हमें अभ्यास के माध्यम से मन की नई आदतें बनानी पड़ेंगी। इसके लिए हमें एक नियमित स्थान पर व नियमित स्थान पर प्रतिदिन चुप करके बैठना पड़ेगा। भले ही हमारा यह बैठना चाहे पाँच या दस मिनट के लिए ही क्यों न हो। सुबह-शाम नियमित रूप से यह अभ्यास करने से इस मैडिटेशन को सीखा जा सकता है।

मैडिटेशन के तरीके में पृथक-पृथक पड़ाव हैं, जिन्हें कि हमें धीरे-धीरे सीखते जाना चाहिए। यदि सम्भव हो तो हमें ये अभ्यास, किसी अच्छे गुरु की देख-रेख में ही करने चाहिए। सबसे पहले तो अपने शरीर को शिथिल करना सीखो। डाक्टरों की खोज के अनुसार हमारे नब्बे प्रतिशत रोग, हमारे शरीर की मांसपेशियों के तनाव के कारण ही होते हैं। हमारे मनो-शारीरिक रोगों का कारण ही हमारी मांसपेशियों व मानसिक तन्तुओं का तनाव है। हम इन सबका उपचार बाहर ढूँढ़ते हैं, जबकि इन सबका कारण हमारे अन्दर ही है।

अतः सबसे पहले अपने शरीर को शिथिल करना है। यह शरीर और मन दोनों के लिए नितान्त आवश्यक है। इसके लिए जरूरी है कि ठीक ढंग से श्वास लिए जाएँ। तुम पूरी तरह से शिथिल हो सकते हो बशर्ते कि तुम्हें ठीक ढंग से श्वास लेना आता हो। आमतौर पर हमारे श्वास बहुत ही उथले होते हैं जिस कारण से हमारे फेफड़ों का बहुत थोड़ा भाग ही काम करता है। अच्छी तरह से व ठीक ढंग से श्वास लेना सीखकर ही यानि कि इसका ठीक अभ्यास करके ही हम इसे ठीक कर सकते हैं। यहाँ तक कि ठीक ढंग से सोच कर भी हम किसी भी नासिका के प्रवाह को चालू कर सकते हैं। इससे हृदय की गति भी धीमी रहेगी तथा मन भी शान्त रहेगा।

दूसरा पड़ाव यह है कि तुम अपने विचारों को देखो, उनका सर्वेक्षण करो कि कौन-कौन से विचार तुम्हारे अन्दर बार-बार उठते हैं। तुम न तो उन्हें दबाने की कोशिश करो और न ही यह कोशिश करो कि ये विचार तुम्हारे अन्दर न उठें बल्कि तुम केवल उन्हें देखो। शुरू-शुरू में तो तुम्हें यह कार्य कठिन प्रतीत होगा लेकिन धीरे-धीरे अभ्यास के माध्यम से तुम्हें यह सरल प्रतीत होने लग पड़ेगा। तुम अपने विचारों के लिए, अपने काम के लिए पूर्णतः निरपेक्ष हो जाओ, निर्लिप्त हो जाओ क्योंकि एक निर्लिप्त मनुष्य ही पूर्णतः शान्त हो सकता है। निरपेक्षता प्राप्त करके या केवल एक प्रेक्षक बनकर ही मन की पूरी शान्ति अथवा उसका शिथिलीकरण प्राप्त किया जा सकता है। इसके साथ ही शरीर का भी पूर्ण शिथिलीकरण हो सकता है और इसके बाद ही तुम मन को एकाग्र करके उसे केन्द्रित कर सकते हो। एकाग्रता मैडिटेशन नहीं है बल्कि यह तो केवल एक शुरुआत है। एकाग्रता तो केवल किसी वस्तु पर या किसी केन्द्र पर की जा सकती है जबकि मैडिटेशन तो विषयहीन और वस्तुहीन है। एकाग्रता के द्वारा वजन पड़ता है, तनाव बढ़ता है जबकि मैडिटेशन शिथिलता व आराम देती है।

मैडिटेशन की तीसरी सीढ़ी है प्राणों पर नियन्त्रण स्थापित करना यानि कि जीवन शक्ति पर नियन्त्रण स्थापित करना। दरअसल हमारे समस्त कार्यों के पीछे हमारे श्वास ही हैं। हमारे शरीर में कुछ इस प्रकार की नाड़ियाँ हैं, कुछ इस प्रकार के नाड़ी केन्द्र हैं जिन्हें कि यदि जागृत किया जाए तो वे सारे शरीर को नियन्त्रित कर देती हैं। यह करने के लिए तुम्हें प्राण विज्ञान सिखाने की जरूरत है। केवल मैडिटेशन के माध्यम से ही, योग के अभ्यास के माध्यम से ही तुम अपने श्वासों को नियन्त्रित कर सकते हो अर्थात् ऐसा करके ही तुम अपने प्राणों को अपने अधीन करके उन पर नियन्त्रण स्थापित कर सकते हो।

‘चलता’

रतवाड़ा साहिब में महापुरुषों के प्रवचनों का कार्यक्रम

प्रत्येक रविवार रतवाड़ा साहिब
(12.00 बजे से 4.00 बजे तक)

पूर्णिमाशी - 29 मई, दिन मंगलवार।
(रात्रि 12.00 बजे से प्रातः 4.00 बजे तक)
संक्रान्ति - वैसाखि, 14 मई, दिन सोमवार।
(प्रातः 5.30 बजे से 8.00 बजे तक)

अमृत संचार - महीने के प्रथम रविवार को गुरुद्वारा ईशर प्रकाश रतवाड़ा साहिब में सुबह 11.00 बजे होता है।

INTERNET MEDIA AND LIVE TELECAST

Website : www.ratwarasahib.in
Website : www.ratwarasahib.org
Instagram : [RATWARA SAHIB \(https://instagram.com/ratwara.sahib/\)](https://instagram.com/ratwara.sahib/)
You Tube : <https://www.youtube.com/user/babalakhbirsingh>
Facebook : <https://www.facebook.com/ratwarasahib1>
Twitter : <https://mobile.twitter.com/ratwarasahib13>
Live Audio Link 1 - <https://www.awdio.com/Ratwara Sahib>
Live Audio Link 2 - <https://mixlr.com/ratwara-sahib>
E-mail :- sratwarasahib.in@gmail.com

(पृष्ठ 6 का शेष)

डालने का प्रयास करेंगे अतः समस्त पाठकजनों और श्रद्धालुजनों को इसमें शामिल होने के लिए निवेदन किया जाता है। ट्रस्ट रतवाड़ा साहिब के वर्तमान मुखी सन्त बाबा लखबीर सिंह जी 7 अप्रैल को 'आस्ट्रेलिया गुरुमति प्रचार फेरी' के बाद वापिस अपने देश लौट आए हैं। लगभग एक महीने की इस प्रचार फेरी के दौरान आस्ट्रेलिया के पृथक-पृथक राज्यों व शहरों में कथा कीर्तन के प्रवाह चलते रहे तथा संगत ने नाम-वाणी का खूब लाभ प्राप्त किया।

ट्रस्ट रतवाड़ा सकाहिब का केवल एक ही उद्देश्य है कि 'आपि जपहु अवरह नामु जपावहु।।' जो परिपाटी प्यारे महापुरुषों ने चलाई थी उसी पर पहरा दे रहे हैं। ट्रस्ट के वर्तमान मुखी सन्त बाबा लखबीर सिंह जी, पिछले वर्ष शारीरिक आप्रेशन के बावजूद भी उसी तरह से गुरुमति समागमों की दिन-रात हाजिरी भरनी, रतवाड़ा साहिब की शिक्षण संस्थाओं के प्रबन्धों को ठीक ढंग से चलाना, संगत

के लिए अनेकानेक परोपकारी कार्यों को जारी रखना, अस्पताल के माध्यम से निःशुल्क स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध करवाना 'आत्म मार्ग मैगजीन' का सुव्यवस्थित संचालन करना तथा निःशुल्क सिलाई व कढ़ाई प्रशिक्षण केन्द्र को बाखूबी चलाना इत्यादि सब कुछ उन्हीं के हिस्से में आया है। साहिब श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी की कृपा तथा प्यारे महापुरुषों व परम सम्माननीया माता जी के पावन आशीर्वाद एवं समस्त संगत के सहयोग की बदौलत यह सब कुछ सम्भव हो पा रहा है। गुरु जी अपनी कृपा बनाए रखें तथा समस्त संगत की यह हार्दिक अरदास है कि गुरु जी उन्हें सदैव शारीरिक तौर पर स्वस्थ रखें ताकि आप हमेशा इसी प्रकार से संगत की सेवा में तत्पर रहें तथा साथ ही 'आपि जपहु अवरह नामु जपावहु' के सिद्धान्त पर पहरा देते हुए संगत को कीर्तन व नाम वाणी के माध्यम से सदैव ठंडक पहुँचाते रहें क्योंकि केवल नाम ही शान्ति का स्थाई श्रोत है -

चंदन चंदु न सरद रुति मूलि न मिटई घाँम ॥

सीतलु थीवै नानका जपंदड़ो हरि नामु ॥ अंग - 709

आवश्यक निवेदन

आत्म मार्ग मैगज़ीन की मैंबरशिप/रिन्यूवल या दसवंद पंजाब एंड सिंध बैंक की किसी भी शाखा द्वारा निम्नलिखित बैंक खातों में भेजी जा सकती है।

भारत (INDIA)

आत्म मार्ग मैगज़ीन की मैंबरशिप/रिन्यूवल भेजने के लिए -

VGRMCT / Atam Marg Magajine

S/B A/C No. 12861000000003

RTGS/IFSC Code - PSIB0021286

Branch Code - C1286

दसवंद भेजने के लिए -

Vishav Gurmat Roohani Mission Charitable Trust

SB A/C No. 12861100000005

RTGS/IFSC Code - PSIB0021286

Branch Code - C1286

विदेश (ABROAD)

Vishav Gurmat Roohani Mission Charitable Trust

Punjab National Bank

SB A/C No. 0779000100179603

RTGS/IFSC Code - PUNB0077900

Branch Code - 077900

यदि चैक अथवा बैंक ड्राफ्ट द्वारा राशि भेजनी हो तो ऊपरलिखित खातों अनुसार Gurdwara Ishar Parkash Ratwara Sahib, P.O. Mullanpur Garibdas. Distt S.A.S. Nagar (Mohali) - 140901 पर भेजने की कृपा करें। यदि Online राशि भेजनी हो तो राशि की जानकारी देते समय अपना नाम व पूरा पता मोबाइल नं. +91-98889-10777 पर SMS भेजें जी।

सर्व साधारण को सूचित किया जाता है कि यदि आपने अभी तक आत्म मार्ग मासिक पत्रिका की सदस्यता ग्रहण नहीं की है तो आप कृपया अधोलिखित प्रारूप पत्र को भरकर सदस्यता ग्रहण करने की कृपा करें। यदि आप पहले से ही सदस्यता ग्रहण कर चुके हैं, तो पुनर्नवीनीकरण हेतु इस प्रारूप पत्र के साथ आवश्यक चैक/ड्राफ्ट "VGRMCT/ATAM MARG MAGAJINE" के नाम पर प्रेषित करने की कृपा करें।

Subscription form



नई सदस्यता

 पुनर्नवीनीकरण

 आजीवन सदस्यता

within India

Annual

Life

Subscription Period	By Ordinary Post/Cheque	By Registered Post/Cheque	U.S.A.	60 US\$	600 US\$
1 Year	Rs. 300/320		U.K.	40 £	400 £
3 Year	Rs. 750/770		Europ	50 Euro	500 Euro
5 Year	Rs. 1200/1220		Australia	80 Aus \$	800 Aus \$
Life	Rs 3000/3020				

जनवरी

फरवरी

मार्च

अप्रैल

मई

जून

जुलाई

अगस्त

सितम्बर

अक्टूबर

नवम्बर

दिसम्बर



नाम/Name पता/Address.....

.....Pin Code..... Phone E-mail :.....

सन्त वरियाम सिंह चैरिटेबल अस्पताल, रतवाड़ा साहिब

समय - सुबह 9.30 बजे से 2.00 बजे तक (रविवार से शुक्रवार)

डाक्टरों का समय - सुबह 10.00 बजे से 12.00 बजे तक

दूरभाष नं. 98786-95178, 92176-93845

डा. का नाम	विशेषज्ञ	दिन
1. डा. जसबीर कौर	जनरल मैडिसन	सोमवार
2. डा. गुरिंदर कौर कंग	एम. डी. (गाइनी)	सोमवार
3. डा. कुलदीप सिंह कंग	एम. डी. (आँखों के विशेषज्ञ)	सोमवार
4. डा. हरबंस सिंह	अस्थि रोग तथा जनरल मैडिसन	मंगलवार
5. डा. तेजिंदर सिंह	जनरल मैडिसन	मंगलवार
6. जे.पी.आई. अस्पताल मोहाली के डाक्टर	आँखों के विशेषज्ञ	मंगलवार
7. श्री माइकल जी	एक्स-रे विशेषज्ञ	मंगलवार तथा वीरवार
8. डा. भगत सिंह मक्कड़	जनरल मैडिसन/ई.एन.टी./ब्लड शूगर आदि	बुद्धवार
9. डा. जे. एस. गुजराल	जनरल मैडिसन/शिशु रोग विशेषज्ञ	बुद्धवार
10. डा. आर. एस. संधू	अस्थि रोग तथा जनरल मैडिसन	वीरवार
11. डा. संतोष अनेजा	जनरल मैडिसन	वीरवार
12. डा. जसप्रीत सिंह	एम.डी.एस. (दाँतों के विशेषज्ञ)	वीरवार
13. डा. एस. के. बांसल	जनरल मैडिसन	शुक्रवार
14. डा. बरिन्दर सिंह	जनरल मैडिसन तथा त्वचा रोग विशेषज्ञ, एअरो स्पेस मैडिसन	शुक्रवार
15. डा. भगत सिंह मक्कड़	जनरल मैडिसन/ई.एन.टी./ब्लड शूगर आदि	रविवार
16. डा. जिंदल	जनरल मैडिसन	रविवार
17. डा. गुरप्रीत कौर गिल	होम्योपैथिक	बुद्धवार

-: लैबोरेटरी टैस्ट तथा अन्य सुविधाएँ :-

1. खून टैस्ट, 2. सारे खून सैल काउंट टैस्ट 3. ब्लड शुगर टैस्ट, 4, किडनी टैस्ट, 5. लीवर टैस्ट, 6. लिपिड परोफाइल टैस्ट, 7. थायराइड टैस्ट, 8. हिमोग्लोबिन टैस्ट, 9. पेशाब टैस्ट, 10. स्टूल टैस्ट, 11. ई.सी.जी., 12. एक्स-रे (क्ष-किरण)

सारे लैबोरेटरी टैस्ट आधे शुल्क पर किये जाते हैं तथा मरीज को दवाई मुफ्त दी जाती है।

जरूरी सूचना

प्रत्येक रविवार को अस्पताल खुला रहेगा। समय 11.00 से 1.00 बजे तक। प्रत्येक शनिवार को अस्पताल बन्द रहेगा।

विश्व गुरुमत रूहानी मिशन चैरिटेबल ट्रस्ट

के मुख्य संस्थापक प्यारे महापुरुष सन्त बाबा वरियाम सिंह जी द्वारा लिखित व प्रकाशित पुस्तकें

यह पुस्तकें श्री गुरु ग्रन्थ साहब जी के गूढ़ सिद्धान्तों को सरल रूप में स्पष्ट करके जिज्ञासुओं के समक्ष प्रस्तुत करती हैं। इनकी विषय वस्तु के रूप में नाम, सेवा व स्मरण की विधियों को प्रस्तुत करते हुए जन साधारण की भाषा का अत्यन्त सरल, मार्मिक व हृदयस्पर्शी प्रयोग किया गया है। यह दुर्लभ पुस्तकें, प्रत्येक जिज्ञासु व साधक के लिए एक अमूल्य निधि के रूप में हैं। अध्यात्मिक सुख व शान्ति प्राप्त करने हेतु आप इन्हें प्राप्त करके स्वयं पढ़ें तथा अन्य श्रद्धालुजनों को भी पढ़ने के लिए प्रेरित करें। यह सभी पुस्तकें गुरुद्वारा ईशर प्रकाश रतवाड़ा साहब में आपकी सेवार्थ उपलब्ध हैं -

हिन्दी		English Version	Price
1. सुरति शब्द मार्ग	70/-	1. Baisakhi	Rs. 5/-
2. किव कुड़ै तुटै पालि	35/-	2. How Rend The Veil of Untruth	Rs. 70/-
3. बात अगम की - सात भागों में	400/-	C. Discourses on the Beyond -1	Rs 50/-
4. किव सचिआरा होइए - भाग पहला	35/-	4. Discourses on the Beyond -2	Rs. 50/-
5. किव सचिआरा होइए - भाग दूसरा	65/-	5. Discourses on the Beyond -3	Rs. 50/-
6. किव सचिआरा होइए - भाग तीसरा	100/-	6. Discourses on the Beyond -4	Rs. 60/-
7. होवै आनन्द घणा	30/-	7. Discourses on the Beyond -5	Rs. 60/-
8. बाबाणियाँ कहानियाँ	50/-	8. The way to the imperceptible	Rs. 80/-
9. सुरतिआं उपजै चाउ	40/-	9. The Lights Immortal	Rs. 20/-
10. सर्व प्रिय गुरु गोबिंद सिंह जी	10/-	10. Transcendental Bliss	Rs. 70/-
11. भक्त प्रहलाद	10/-	11. How to Know Thy Real Self-(Vol-1)	Rs. 80/-
12. अमृत फुहार	10/-	12. How to Know Thy Real Self-(Vol-2)	Rs. 80/-
13. अगम अगोचर का मार्ग	70/-	13. How to Know Thy Real Self-(Vol-3)	Rs. 110/-
14. जपुजी साहिब सटीक	15/-	14. The Dawn of Khalsa Ideals	Rs. 10/-
15. अमर ज्योतियाँ	15/-	15. A Glimpse of His Holiness - Baba ji	Rs. 5/-
16. अमर गाथा	100/-	16. Divine Word Contemplation Path	Rs. 150/-
17. वैशाखी	10/-	17. The Story of Immortality	Rs. 260/-
18. साजन चले प्यारिआ	10/-	18. Why not Contemplate the Lord	Rs. 200/-
19. अविनाशी ज्योति - भाग 1	90/-		
20. रूहानी गुलदस्ता	70/-		
21. चउथै पहरि सबाह कै	60/-		

ऊपरलिखित पुस्तकें आप जी मनीआर्डर, चैक अथवा बैंक ड्राफ्ट द्वारा रतवाड़ा साहिब से मंगवा सकते हैं या ट्रस्ट के अकाउंट में राशि जमा करवा कर मोबाइल नं. 9417214391, 9592009106, 9417214379 पर सूचित कर सकते हैं। **Bank Name : Pb & Sind Bank, A/c Name. VGRMCT/Atam Marg Magajine, S/B A/C No. 1286100000003, RTGS/IFSC Code - PSIB0021286, Branch Code - C1286**

How to become True to the Creator ?

Sant Waryam Singh Ji
English Translation: Prof. Beant Singh

(Continued from P. 76, issue April, 2018)

So, describing the importance and significance of God's Name, Guru Sahib says -

*'Lest in these pleasures involved I forget
Thee,*

Thy Name from my mind effaced.' P. 14

ਮਤੁ ਦੇਖਿ ਭੂਲਾ ਵੀਸਰੈ ਤੇਰਾ ਚਿਤਿ ਨ ਆਵੈ ਨਾਉ ॥

Thereafter, referring to the world of occult or spiritual powers, Guru Sahib says that 'ridhis-sidhis' (miraculous spiritual powers) may gain name and fame in the world, but they are worthless -

*'Were I to be a Siddha, master of
accomplishment, calling forth miracles,
At will concealing and manifesting my
form, centre of the world's faith:*

*Lest in these wonders engrossed I forget
Thee,*

Thy Name from my mind effaced.' P. 14

ਸਿਧੁ ਹੋਵਾ ਸਿਧਿ ਲਾਈ ਰਿਧਿ ਆਖਾ ਆਉ ॥

ਗੁਪਤੁ ਪਰਗਟੁ ਹੋਇ ਬੈਸਾ ਲੋਕੁ ਰਾਖੈ ਭਾਉ ॥

ਮਤੁ ਦੇਖਿ ਭੂਲਾ ਵੀਸਰੈ ਤੇਰਾ ਚਿਤਿ ਨ ਆਵੈ ਨਾਉ ॥

Clarifying this very subject further Guru Sahib says in Jap Ji Sahib -

*'If a man were to live for all the ages four,
And find his life extended by ten times more;
If he were to become known in the
continents nine,*

*And all were to follow him as his votaries
fine;*

If he were to win good name,

*And all over the world to obtain glory and
fame;*

*Unnoticed would he go, if His grace God
doesn't' confer;*

*Deemed would he be as the meanest worm,
And accursed by the vile as the rankest
sinner.*

*On the meritless, O Nanak, He does merit
confer,*

And the meritorious He makes prosper;

*But I can think of none who on Him can
virtue confer.'* P. 2

ਜੇ ਜੁਗ ਚਾਰੇ ਆਰਜਾ

ਹੋਰ ਦਸੁਣੀ ਹੋਇ ॥

ਨਵਾ ਖੰਡਾ ਵਿਚਿ ਜਾਣੀਐ

ਨਾਲਿ ਚਲੈ ਸਭੁ ਕੋਇ ॥

ਚੰਗਾ ਨਾਉ ਰਖਾਇ ਕੈ

ਜਸੁ ਕੀਰਤਿ ਜਗਿ ਲੇਇ ॥

ਜੇ ਤਿਸੁ ਨਦਰਿ ਨ ਆਵਈ

ਤ ਵਾਤ ਨ ਪੁਛੈ ਕੇ ॥

ਕੀਟਾ ਅੰਦਰਿ ਕੀਟੁ ਕਰਿ

ਦੋਸੀ ਦੋਸੁ ਧਰੇ ॥

ਨਾਨਕ ਨਿਰਗੁਣਿ ਗੁਣੁ ਕਰੇ

ਗੁਣਵੰਤਿਆ ਗੁਣੁ ਦੇ ॥

'Ridhis-sidhis' (mundane as well as miraculous or spiritual powers) come to be acquired with the concentration of mind. They delude the spiritual seeker and make him stray from the path, while the world praises him that he can vanish, and from his closed fist, he can give anything that one begs from him.

In October 1978, when I came to Chandigarh after selling my farm in U.P. I was sitting at the house of Bibi Devinder Kaur, who, at present is serving as Secretary and Finance Manager in the Mission. She referred to a holy man (tantrik) and said, "He came to our house. He used to show many miraculous powers. In this lay his name and fame. He said to us - what do you want? Then Bibi Devinder Kaur's husband, Col. Harnam Singh said - we wish to eat hot 'rasgulas' (name of a sweet). Covering a big plate with a piece of cloth, he directed it to be kept high. After sometime, when the cloth was removed, the plate was found to be full of hot 'rasgulas'."

Dr. Swami Ram Ji says in his autobiography, "Once, taking a Brahmin with me, I went to see a holy man on a high mountain at a distance of a few miles from Srinagar. He abused the Brahmin accompanying me saying - 'On the way, you have been speaking ill of me, and now you are paying obeisance to me.' Thereafter, he said to him (Brahmin), "Take this knife. Down below, a dead body is coming floating in the Ganges. Cut two seers of flesh from it and bring it." The Brahmin had not cut even vegetables before. He was confused and agitated. But so strict was that holy man's command that he was obliged to obey. When he cut the flesh from the dead body, two of his own fingers got cut and hung loosely. When he came with the flesh, the holy man took his hand in his hand and to our great surprise, we found the Brahmin's fingers joined with his palm. When the holy man was cooking the flesh we said - 'We are vegetarians'. He said - 'I won't serve you non-vegetarian food.' When the flesh was getting cooked the holy man asked us to

bring leaves. The Brahmin brought the leaves all right but whispered in my ears - 'If he forces me to eat flesh, I will jump into the Ganges and kill myself.' The holy man thundered, "O Brahmin! what are you saying? You will have to eat what I am cooking." Our surprise knew no bounds when he served us tasty 'rasgulas' on our leaves. We discussed with each other, "Hasn't he hypnotized us that flesh is appearing to be rasgulas?" He said, "I haven't hypnotized you. Swami! when you were passing through Srinagar, didn't you think of eating 'rasgulas'? I have only fulfilled your desire." We were very much surprised. I stayed there for the night, while the Brahmin returned to Srinagar. At night, I asked him, "How have you acquired this power?" He said, "I am a Ph.D. in Sanskrit. In the Atharva Veda, I had read that the basic atoms of nature can be changed. On the strength of my education, I can transform everything." When I asked him how many persons knew this art, he said, "In India, there are only three such persons." Swami Ji writes, "He insisted on me to learn this art." When I asked him how much time it would take, he said that he acquired it in twenty years. I said - I am not going to waste so much time because these acquisitions don't give any peace of mind. The fount of peace lies in the Name Divine. It is the Name-relish or elixir that gives poise to the mind.

'Without devotion to the Name Divine comes not joy and peace -

How may the mind then find poise?' P. 707

ਬਿਨੁ ਹਰਿ ਨਾਮ ਨ ਸਾਂਤਿ ਹੋਇ

ਕਿਤੁ ਬਿਧਿ ਮਨੁ ਧੀਰੇ ॥

So, in this way, Guru Sahib has not liked and approved of the acquisition of occult or miraculous powers, and has said

that these powers should not delude the mind and make man forgetful of God. The Name Divine is invaluable. Its value cannot be known by anyone-

*'Lest in these pleasures involved I forget
Thee,
Thy Name from my mind effaced.'* P. 14

ਮਤੁ ਦੇਖਿ ਭੂਲਾ ਵੀਸਰੈ
ਤੇਰਾ ਚਿਤਿ ਨ ਆਵੈ ਨਾਉ ॥

Fourth power is 'state or political power'. To gain state power, political persons practise deceit, forge alliances, and within their self they are totally different and acquire high positions. Guru Sahib says - 'What then? These high positions do not give peace of mind, as has been stated earlier-

*'May I burn in flames, should I without the
Lord live.
My Preceptor have I consulted.
No shelter without the Lord may be found.'*

P. 14

ਹਰਿ ਬਿਨੁ ਜੀਉ ਜਲਿ ਬਲਿ ਜਾਉ ॥
ਮੈ ਆਪਣਾ ਗੁਰੁ ਪੂਛਿ ਦੇਖਿਆ
ਅਵਰੁ ਨਾਹੀ ਥਾਉ ॥

State power is nothing as compared with the Name Divine. Guru Sahib says - 'The king is he whose writ runs over air, water, fire, birds, animals and the gods in heaven.' Such is the Gurbani edict -

*'He, whose word is accepted in the Lord's
Court, whom does he care for?'* P. 186

ਜਾ ਕਾ ਕਹਿਆ ਦਰਗਹ ਚਲੈ ॥
ਸੋ ਕਿਸ ਕਉ ਨਦਰਿ ਲੈ ਆਵੈ ਤਲੈ ॥

Guru Sahib also tells us that the one with the Name Divine is the king of kings, even if his worldly position may be very poor -

*'Anyone living in a battered hovel, his
clothes tattered, without high caste, respect
or honour, in wild places wandering;*

*Without friend or sympathizer; without
wealth or fine form,
Relations or associates - should his heart
with love of the Name Divine be suffused,
Is king over the whole world?
By touch of dust of his feet is the mind
liberated,
And Divine pleasure won.'* P. 707

ਬਸਤਾ ਤੂਟੀ ਤੁੰਪੜੀ
ਚੀਰ ਸਭਿ ਛਿੰਨਾ ॥
ਜਾਤਿ ਨ ਪਤਿ ਨ ਆਦਰੋ
ਉਦਿਆਨ ਭੁਮਿੰਨਾ ॥
ਮਿਤ੍ਰੁ ਨ ਇਠ ਧਨ ਰੂਪਗੀਣ
ਕਿਛੁ ਸਾਕੁ ਨ ਸਿੰਨਾ ॥
ਰਾਜਾ ਸਗਲੀ ਸ੍ਰਿਸਟਿ ਕਾ
ਹਰਿ ਨਾਮਿ ਮਨੁ ਭਿੰਨਾ ॥
ਤਿਸ ਕੀ ਧੂੜਿ ਮਨੁ ਉਧਰੈ
ਪ੍ਰਭੁ ਹੋਇ ਸੁਪ੍ਰੰਸਨਾ ॥

There are many other similar edicts in Gurbani -

*'Amongst the scholars, warriors, canopied
kings and others, there is no one equal to the
Lord's slave.'* P. 858

ਪੰਡਿਤ ਸੂਰ ਫਤ੍ਰਪਤਿ ਰਾਜਾ
ਭਗਤ ਬਰਾਬਰਿ ਅਉਰੁ ਨ ਕੋਇ ॥

*'Nanak, false are other empires.
They alone are the true kings who are
imbued with the Lord's Name.'* P. 1413

ਨਾਨਕ ਹੋਰਿ ਪਤਿਸਾਹੀਆ ਕੂੜੀਆ
ਨਾਮਿ ਰਤੇ ਪਾਤਿਸਾਹ ॥

*'He, whom God grants His laudation's
blessings,
Is O Nanak, king of kings.'* P. 5

ਜਿਸ ਨੋ ਬਖਸੇ ਸਿਫਤਿ ਸਾਲਾਹ ॥
ਨਾਨਕ ਪਾਤਿਸਾਹੀ ਪਾਤਿਸਾਹੁ ॥

So, Guru Sahib addressing the deluded 'jeev' (sentient being) intoxicated with state power, says-

'My dear! these state powers do not last

forever. The real thing is the Name Divine. He who is imbued with the Name is the True King.

'Whoever in heart bears the Name, is truly a great king.

Whoever in heart bears the Name, fulfilled are all his objectives.' P. 1155

ਜਿਸੁ ਨਾਮੁ ਰਿਦੈ ਸੋਈ ਵਡ ਰਾਜਾ ॥
ਜਿਸੁ ਨਾਮੁ ਰਿਦੈ ਤਿਸੁ ਪੂਰੇ ਕਾਜਾ ॥

This is because the entire nature, all gods and goddesses and Lord God Himself carry out his bidding and do not let it go in vain -

'My saint can release one bound by me, but I can release not one bound by my saint.

If, at any time, my saint seizes and binds me, then even I can raise not any objection.' P. 1252

ਮੇਰੀ ਬਾਂਧੀ ਭਗਤੁ ਛੁਡਾਵੈ
ਬਾਂਧੈ ਭਗਤੁ ਨ ਛੁਟੈ ਮੋਹਿ ॥
ਏਕ ਸਮੇ ਮੈ ਕਉ ਗਹਿ ਬਾਂਧੈ
ਤਉ ਫੁਨਿ ਮੈ ਪੈ ਜਬਾਬੁ ਨ ਹੋਇ ॥

Therefore, the Guru's edict is -

'Were I to be a monarch, gathering vast hordes,

*On a throne setting my foot,
My writ running far and wide -
Nanak all is void.*

*Lest dazzled by such splendour I forget Thee,
Thy Name from my mind effaced.'* P. 14

ਸੁਲਤਾਨੁ ਹੋਵਾ ਮੇਲਿ ਲਸਕਰ
ਤਖਤਿ ਰਾਖਾ ਪਾਉ ॥
ਹੁਕਮੁ ਹਾਸਲੁ ਕਰੀ ਬੈਠਾ
ਨਾਨਕਾ ਸਭ ਵਾਉ ॥
ਮਤੁ ਦੇਖਿ ਭੂਲਾ ਵੀਸਰੈ
ਤੇਰਾ ਚਿਤਿ ਨ ਆਵੈ ਨਾਉ ॥

Therefore, comprehend the Guru's edict and abide by it. It is very clear and specific-

Refrain: Burnt is one's being,

Without the Name Divine.

ਧਾਰਨਾ - ਜਲ ਬਲ ਜਾਵੇ ਜਿਉੜਾ,
ਨਾਮ ਤੋਂ ਬਿਨਾਂ
ਨਾਮ ਤੋਂ ਬਿਨਾਂ ਜਿਉੜਾ

Earlier, you have already read what I had submitted that becoming countless beings from one, the Lord is pervading everywhere; that is the state of Truth. Cautioning the devotees a little, this too had been stated that many persons learning about the Truth through the intellect, start repeating the utterances of holy men who have realized the Ultimate Reality, but themselves lost in the darkness of ignorance, undergo sorrows and sufferings. Involved in the world of sensual pleasures, verbally they continue repeating: 'Brother, God is but One only.' But these words can be said by the likes of Saint Namdev and Bhai Ghanaiya Ji who glimpsed the Lord in manifest and transcendent form. Their way of life is different from others' -

'They who are pleasing to God, become God's servants. Theirs is a special tale.

They come and go not, nor do they die ever. They abide with the Supreme Lord.' P. 855

ਹਰਿ ਕੇ ਸੇਵਕ ਜੋ ਹਰਿ ਭਾਏ
ਤਿਨ ਕੀ ਕਥਾ ਨਿਰਾਰੀ ਰੇ ॥
ਆਵਹਿ ਨ ਜਾਹਿ ਨ ਕਬਹੂ ਮਰਤੇ
ਪਾਰਬ੍ਰਹਮ ਸੰਗਾਰੀ ਰੇ ॥

Baba Bhag Singh Ji has been a great holy man in the superior sect of Bhai Daya Singh Ji after Baba Sahib Singh Bedi and before Baba Bir Singh Ji. He was a youth of about 22 years, when, once, imbued with great love and devotion, he was going on a pilgrimage to Hazoor Sahib. Many devotees think in their mind: Why do saints and those who have realized the Ultimate Spiritual Reality and glimpsed the Lord in every being, go on long pilgrimages to holy places

associated with the Gurus, and pilgrim centres like *Kabah, Mecca, Madina, Badrinath, Haridwar* etc.? In this context, Saint Kabir's views are very clear -

'As Kabir for Haz to Kaaba was proceeding, he met God on the way. The Lord rebuked me, who told you in that, spot I was confined?' P. 1375

ਕਬੀਰ ਹਜ ਕਾਬੇ ਹਉ ਜਾਇ ਥਾ
ਆਗੈ ਮਿਲਿਆ ਖੁਦਾਇ ॥
ਸਾਂਈ ਮੁਝ ਸਿਉ ਲਰਿ ਪਰਿਆ
ਤੁਝੈ ਕਿਨਿ ਫੁਰਮਾਈ ਗਾਇ ॥

The Lord says, "Kabir! when you are glimpsing Me pervading in every being; in every particle of creation am I present; when mountains, vegetation, sun, moon, stars and planets, water, air, fire etc. are pervaded by My Being, then what for you are you going to *Kaaba*? Who has told you that I live in *Kaaba* only?" These true utterances about the True One are meant for us who wrongly think that God abides at pilgrim centres. On the strength of this notion, we visit pilgrim centres and places associated with the Gurus. Many devotees think that at those places, they will have a glimpse of the *Gurus, Pirs* (Muslim holy men) and prophets. All these beliefs belong to the realm of faith and devotion. The reality is different. That is: holy men visit pilgrim centers and holy places because God has put them on the duty of extricating the world from the darkness of ignorance and enlightening them with God's Light. By visiting pilgrim centres and holy places, they show to the world the path of truth through their true discourses. There is an edict in *Gurbani* that the Guru pervades each and every living being -

'The Guru is ever with me and near me. Ever I remember and contemplate Him.'

P. 394

ਗੁਰ ਮੇਰੈ ਸੰਗਿ ਸਦਾ ਹੈ ਨਾਲੇ ॥
ਸਿਮਰਿ ਸਿਮਰਿ ਤਿਸੁ ਸਦਾ ਸਮਾਲੇ ॥

So, doubts on this score are needless and in vain. Baba Bhag Singh was a perfect human being from birth itself. It was in obedience to an inner urge which works in true holy men that he made programmes of visiting holy places associated with the Gurus, as the Sovereign Third Guru visited pilgrim centres for the liberation of human beings -

'In order to save the world did the holy Preceptor undertake pilgrimages to holy spots.' P. 1116

ਤੀਰਥ ਉਦਮੁ ਸਤਿਗੁਰੁ ਕੀਆ
ਸਭ ਲੋਕ ਉਧਰਣ ਅਰਥਾ ॥

In this way, once, Baba Bhag Singh, after crossing the *Vindhyachal* mountains near *Puri*, was passing through a jungle. He came to a place where lived many tigers. People of nearby villages, seeing the sun setting were hurrying home. They saw a *Bal-yogi* (young ascetic) sitting on the bank of the lake, where tigers, leopards and other wild beasts came at night to drink water, because it was the only water body in the area. Many well-wishers said to Baba Ji, "O *Bal-yogi*! come with us to the nearby town. Don't sit here because tigers and wild beasts come here at night for water. They will harm you." But Baba Ji was of firm belief that one Supreme Light pervades here, and itself assuming various forms and creating duality is playing its play. He was absorbed in that Supreme Light and glimpsing it manifestly.

'All over the earth and the sky is present one sole Light.

Neither less nor more is it anywhere, and nor does it decrease or increase.' Akal Ustat

ਜਿਮੀ ਜਮਾਨ ਕੇ ਬਿਖੇ ਸਮਸੱਤ ਏਕ ਜੋਤ ਹੈ
ਨਾ ਘਾਟ ਹੈ ਬਾਢ ਹੈ ਘਾਟ ਬਾਢ ਹੋਤ ਹੈ ॥

Baba Ji said: 'Good folk! don't worry. Those whom you call tigers, leopards panthers, jackals etc. are in my eyes, forms of God Himself. My eyes have fully recognized *Brahm* (God, or Ultimate Reality). Don't worry about this body; in it is manifested Name-Light. Where there is God's Name, all are your own, and none is a stranger or an alien. Take it like this that all are God's own image.' These utterances were beyond the comprehension these simple jungle-folk. They left him in that state. The night passed. They thought: Let us see whether the *Bal-yogi* is alive or has become the food of tigers. They were surprised to see him sitting in deep meditation. He was oblivious of his surroundings. Many elderly persons saw the pug marks of many tigers which had reached the *Bal-yogi*. It appeared as if they went back after sniffing him. After sometime, the holy man came out of his trance. The jungle-folk found it difficult to bear the glory of his face and brilliance of his gaze. They were so much impressed that they sat around him with folded hands. They tried to know the mystery of his survival during the night. They said, "O *Bal yogi!* tigers and leopards are dark creatures. Flesh is their food. We see them reaching you too. Their foot marks are clearly visible, but why did they not eat you?" At that moment, the holy man became full of kindness and compassion, and knowing their simple nature, said, "My dear friends! if you are hungry and you have nothing to eat, do you satisfy your hunger by eating your own arm?" All replied in the negative and said, "Even if we are dying of hunger, we cannot eat our arm because that physical pain will cause greater suffering than hunger." On hearing this, the holy man said, "Let me answer your question in two

ways. First is that the entire world has been created by Divine Name Power, which is inestimable and immeasurable. Divine Name has the power to keep the entire world in a state of equilibrium. That Name Divine pervades everywhere. It is present in you and me, birds and animals, water and air, deep seas and the vast sky. Name Divine is a power or energy which cannot be compared with anything. That power permeates every particle of my being as has been stated by Guru Sahib -

*'The Name Divine, bestower of Nine Treasures immortalizing,
In our own self is lodged: Therein abides the Ultimate Silence of ecstasy,
And the unstruck mystical music, of wonders indescribable.'* P. 293

ਨਉ ਨਿਧਿ ਅੰਮ੍ਰਿਤੁ ਪ੍ਰਭ ਕਾ ਨਾਮੁ ॥
ਦੇਹੀ ਮਹਿ ਇਸ ਕਾ ਬਿਸ਼ਾਮੁ ॥
ਸੁੰਨ ਸਮਾਧਿ ਅਨਹਤ ਤਹ ਨਾਦ ॥
ਕਹਨੁ ਨ ਜਾਈ ਅਚਰਜ ਬਿਸਮਾਦ ॥

The world is totally oblivious of this Name-Power. It is trading in rotten paddy husk, and does not pay any attention to grain-like truth or reality. He has come into the world to garner Name-wealth, but, by mistake, is gathering paddy husk. The person in whose being this Name Power is manifested, his inner eyes or Divine sight are opened and he sees God's light revealed in every particle of creation, because this Light has manifested itself in various forms-

*'One and yet who seems many, and enters into myriad forms,
And plays His play, and then winds it up, and becomes the one again.'* Jaap Sahib

ਏਕ ਮੂਰਤਿ ਅਨੇਕ ਦਰਸਨ ਕੀਨ ਰੂਪ ਅਨੇਕ ॥
ਖੇਲ ਖੇਲ ਅਖੇਲ ਖੇਲਨ ਅੰਤ ਕੋ ਫਿਰ ਏਕ ॥

Tigers are also the miracle of this Power, as is this body. The Lord's strict law

and command is operating in the world. Whatever is happening is in obedience to Divine Ordinance and Will, and what He wishes. But we do not have faith in Him. This thought occurs in our mind: 'If I do not do this task or act in this manner, how shall I manage?' We do not know that every breath of ours is functioning as per the Divine Ordinance. We are so foolish that we ever claim: 'I am doing this, I am doing that.' This thought alienates man from God, and becoming weak and lowly he spends his life in sighing and weeping. My dear friends! this thing you can learn by regularly keeping the company of the holy. Now, let me tell you in brief that the tigers too were my own form and image. So, how could they eat me?"

Holy congregation! if you have experienced this, then it is right and proper to assert that here in this world there is nothing other than God. The big self and the small self will change into the Supreme Self. Therefore, at such a moment, if I tell you that you yourself are God, it won't be an exaggeration, such as -

'What are they like, who forget not the Name?

They are like the Lord. Know that there is absolutely no difference between the two.'

P. 397

ਜਿਨਾ ਨ ਵਿਸਰੈ ਨਾਮੁ ਸੇ ਕਿਨੇਹਿਆ ॥

ਭੇਦੁ ਨ ਜਾਣਹੁ ਮੁਲਿ ਸਾਂਈ ਜੇਹਿਆ ॥

'Gods like Shiva themselves quest after the God-enlightened.

Saith Nanak: The God-enlightened with the Supreme Being Himself are at One.' P. 273

ਬ੍ਰਹਮ ਗਿਆਨੀ ਕਉ ਖੋਜਹਿ ਮਹੇਸੁਰ ॥

ਨਾਨਕ ਬ੍ਰਹਮ ਗਿਆਨੀ ਆਪਿ ਪਰਮੇਸੁਰ ॥

If one has not gained this experience and yet says that here there is nothing other

than God, then it is a delusion of the mind. Such a one seeks to be called a *Brahm-gyani* (God-enlightened) by saying just this much-

'Not by idle chatter is enlightenment obtained:

Hard as steel is its discourse.' P. 465

ਗਿਆਨੁ ਨ ਗਲੀਈ ਢੂਢੀਐ

ਕਥਨਾ ਕਰੜਾ ਸਾਰੁ ॥

'All claim enlightenment to possess;

Yet expounding it, into disputation they enter, leading to suffering.

None from idle talking is restrained:

Without dyeing in Divine joy comes not liberation.' P. 831

ਗਿਆਨੁ ਗਿਆਨੁ ਕਥੈ ਸਭੁ ਕੋਈ ॥

ਕਥਿ ਕਥਿ ਬਾਦੁ ਕਰੇ ਦੁਖੁ ਹੋਈ ॥

ਕਥਿ ਕਹਣੈ ਤੇ ਰਹੈ ਨ ਕੋਈ ॥

ਬਿਨੁ ਰਸ ਰਾਤੇ ਮੁਕਤਿ ਨ ਹੋਈ ॥

He said, "Divine knowledge is never obtained. The world is tired of expounding it. Living in a state of apostasy, they talk of Divine knowledge. They tell stories of the Inaccessible and Incomprehensible, but they themselves are totally vacuous and bereft of Divine knowledge. On the strength of superficial knowledge, they make such utterances because the knowledge of Truth is never obtained without the guidance of a perfect Holy Preceptor. Guru Sahib's edict is-

'Realization and meditation from the Master is acquired.

Living is pure as the holy Lord in the mind abides.' P. 831

ਗਿਆਨੁ ਧਿਆਨੁ ਸਭੁ ਗੁਰ ਤੇ ਹੋਈ ॥

ਸਾਂਚੀ ਰਹਤ ਸਾਚਾ ਮਨਿ ਸੋਈ ॥

He, who gains Divine enlightenment, his living style changes radically. For him divisions of religions and rituals are demolished, geographical boundaries are

effaced; different forms and shapes and different religions do not impress his eyes. He dispenses his own self. Sometimes, in the form of community kitchens, he serves food to the hungry; somewhere he distributes clothes among the needy; somewhere he uses all his strength to keep educational institutions running, and somewhere he sets up temples in which the needy partake of food in their day-night community kitchens. No living being is out of his vision.

This is the story of such a lover and devotee of God. At *Sudhar* in Ludhiana District, a *Gursikh* in *Nihang's* garb used to render service sixty to seventy years ago. His daily routine was to collect bricks and brickbats from wherever he could. If he was asked about it, he used to say - 'With these bricks will be built colleges'. Looking at the sky, he would say, "See how many are the planes flying!" Nobody realized his Divine insight. With the passage of time, close to *Sudhar*, Halwara airport, Guru Hargobind Sahib *Khalsa* College and Gurdwara Sahib came to be set up. His daily routine was to collect food from the village. He called wayfarers and others to partake of food. A bitch that lived with him guarded the food. Thereafter, he called sparrows, doves and magpies and asked them to sit in rows to partake of food. They alighted on the earth, and he served feed to them. Then he called out to crows to have their feed. After feeding the birds, he went to the pond and said, "O fish! come to have your feed." The fish came to surface as cows used to come in response to Lord Krishna's flute." He broke bread into crumbs and fed the fish and then said, "Remember God. May God occur to your mind!" After finishing with the task, he

came back and fed the bitch. He himself subsisted on the remnants. Such is the living of those, who have seen God in every living creature. So Guru Sahib says, "All talk of Divine knowledge and argue for how the Lord is pervasive. With their reasonings and arguments they come to conclusions how the world was created. The result is pain and suffering. Guru Sahib says - "My dear! everybody talks of Divine knowledge. Thus engaged in discussion, they involve themselves in controversies. Nobody desists from talking and arguing. But unless and until Name-Nectar comes to abide in the heart and inner eyes are opened, there is no emancipation by simply asserting that there is only One God. The key to this knowledge is with the True Guru, about which the *Gurbani* edict is -

'He, whose House it is, has put the lock on it.

The key to the Preceptor (Guru) is given to keep.

This, without seeking the holy Preceptor's shelter,

With no effort may be found.' P. 205

ਜਿਸ ਕਾ ਗ੍ਰਿਹੁ ਤਿਨਿ ਦੀਆ ਤਾਲਾ
ਕੁੰਜੀ ਗੁਰ ਸਉਪਾਈ ॥
ਅਨਿਕ ਉਪਾਵ ਕਰੇ ਨਹੀ ਪਾਵੈ
ਬਿਨੁ ਸਤਿਗੁਰ ਸਰਣਾਈ ॥

So, Guru Sahib says -

'Realisation and meditation from the Master (Guru) is acquired,

Living is pure, as the holy Lord in the mind abides.

Egoists talk, but live not their words.

One forgetful of the Name, no place with God finds.' P. 831

ਗਿਆਨੁ ਧਿਆਨੁ ਸਭੁ ਗੁਰ ਤੇ ਹੋਈ ॥
ਸਾਚੀ ਰਹਤ ਸਾਚਾ ਮਨਿ ਸੋਈ ॥
ਮਨਮੁਖ ਕਥਨੀ ਹੈ ਪਰੁ ਰਹਤ ਨ ਹੋਈ ॥
ਨਾਵਹੁ ਭੁਲੇ ਥਾਉ ਨ ਕੋਈ ॥

Scholars write big articles and essays. Strange are the feats of intellect, but themselves they are slaves of their mind. In spite of themselves being plagued with backbiting, jealousy, pride and avarice, they talk of Divine knowledge. Guru Sahib says that a self-willed person has nothing but idle prattle with him because he is oblivious of God's Name. Name Divine is a real and manifest experience. They, in whose vision is lodged the glimpse of the all-pervasive Lord, never forget the Name. They do not do such deeds, as has been stated earlier about Baba Bhag Singh Ji. The Guru's edict is -

*'Maya has bound the mind in a net in a lake,
That to each being clings through evil
passions.'* P. 831

ਮਨੁ ਮਾਇਆ ਬੰਧਿਓ ਸਰ ਜਾਲਿ ॥
ਘਟਿ ਘਟਿ ਬਿਆਪਿ ਰਹਿਓ ਬਿਖੁ ਨਾਲਿ ॥

Man is bound in the snare of world's pool. In every particle of self-oriented persons, the poison of Maya pervades both within and without. From his individual self, he can never come out. He, who is born in the world, has to depart also from here. Therefore to set right his affairs, he has to remember God's Name -

*'All that into the world arrive, subject to
death are seen.*

*By remembering God with the heart, is
success attained.'* P. 831

ਜੋ ਆਂਜੇ ਸੋ ਦੀਸੈ ਕਾਲਿ ॥
ਕਾਰਜੁ ਸੀਯੋ ਰਿਦੈ ਸਮਾਲਿ ॥

An apostate or self-oriented person lives in the world of egoism and departs from here after losing his honour. His toils and reflections are not his own; rather, they are borrowed ones. As a consequence thereof, he passes away after losing his self-respect. Guru Sahib says that the truly enlightened

is one whose mind's concentration is absorbed in God's Name. Such is the edict-

*'Such alone are truly enlightened as to the
holy Word are attached.*

The egoist egoism-gripped loses honour.'

P. 831

ਸੋ ਗਿਆਨੀ ਜਿਨਿ ਸਬਦਿ ਲਿਵ ਲਾਈ ॥
ਮਨਮੁਖਿ ਹਉਮੈ ਪਤਿ ਗਵਾਈ ॥

In this way, *Gurbani* is unfathomable to understand. The state of knowledge and enlightenment is attained with the acquisition of the Name Divine. The mystery referred to above is explained like this. He, in whom the element of ego has erected a wall, gets alienated from God. Due to being isolated in the expanse of diversity, he feels his separate existence and lives his life in pain and pleasure, joy and sorrow, poverty and affluence. Every deed he does, good or bad surely bears fruit. The little self caught within the bounds of ego is called the '*jeev*' (sentient being). '*Haumein*' (egoism) too is a creation of God through which is getting enacted the play of diversity of creation -

*'The Supreme Creator who made the cosmos,
Into it also introduced egoism;*

The ego it is that is born and dies;

That too transmigrates.'

P. 999

ਜਿਨਿ ਰਚਿ ਰਚਿਆ ਪੁਰਖਿ ਬਿਧਾਤੇ
ਨਾਲੇ ਹਉਮੈ ਪਾਈ ॥

ਜਨਮ ਮਰਣੁ ਉਸ ਹੀ ਕਉ ਹੈ ਰੇ
ਓਹ ਆਵੈ ਜਾਈ ॥

But those who have realized the Truth, and have seen the One Lord both within and without, attain to the mental state of self-realization. Their '*jeev*' - sense (sense of being a

(... to be continued)



The Discourse of Sant Ji

Sant Waryam Singh Ji

(Continued from P. 85, issue April, 2018)

I repeatedly tell you; so long as you are external centered, you feel very insecure, but when you are in your programme of jap or you are in Dhyan then you are most secure. No one can do any harm to you. There should be no place for fear in life. For that you should never forget God, nor depend on anyone else nor have faith in anyone else. What I mean is that if you want to achieve fearlessness, remind yourself again and again and yet again; That I am not a human being; I am His temple. You must have heard how Guru Nanak Dev, while weighing grain, stuck to Number 13 (it is all Terah or your). He went on repeating terah (thirteen), terah (it is all yours, O God) terah. And so practice is most necessary, and for that you don't need any degree from any college. Practice does not need any external education. It is as if one should say I have studied this religion, I have studied another religion too and so on. This indicates thirst for more and more information. The scriptures speak of three kinds of thirst, but there is a fourth type also, namely thirst to acquire more education. Thirst can be quenched only, when one begins to get the bliss of spiritual experience. When you get that taste, you want nothing else. Jesus Christ never studied in any college. The same is true of Guru Nanak Dev. Buddha did not receive any formal education. All the research centres in the world study their messages and so far they have achieved nothing. The sum total of

all the sacred books is, look within. Why do you wander aimlessly hither and thither. So far as I am concerned I have perfect faith (in my Guru). So often have I felt what I am talking now. I have absolutely no worry. Someone says, I will cut off your head. If there is no head, what will you chop off? Fear will appear to you, when you forget the reality whose fear? And fear of what? You should taste the bliss of godly state. The last book of the Christian Bible is called The Book of Revelations. That book describes seven churches from the bottom of backbone to the crown of one's head, (the whole body is the temple of God). There is also the description of the seven chakras (circles). He who knows this real knowledge cannot become a member of any organized religion. This is the chief idea. Anyone can become a saint; anyone on whom there is the Grace of God. I have told you and I repeat again the story of a religious minded woman. She was all the time worshipping God. She always complained to her husband (as is usual with women) that he never offered any prayer. At least devote one day to worship God with me. Do accompany me to the temple. He replied, you are doing Puja for both of us. I don't want to come between you and your Ram (God). You carry on with your programme. Don't trouble me, She said, a day will come when you will have faith in God. You have not accompanied me to the temple even once. The husband said, you keep visiting the temple. It is a good thing.

What shall I do going there?

One night, the husband in a dream said 'Ram'. She was very delighted. She prepared an arti (light for worshipping) and passed that light in front of her husband, in the act of worship. He wondered and asked, why are you doing my arti (act of worship). You have never done any such thing before. She bowed to her husband and said. Today God has heard my prayer. I wanted to hear God's Name from your lip. I daily prayed that I should hear God's Name from your mouth. Today my prayer is fructified. In the dream, you spoke, 'Ram'. He said, has Ram gone outside my body.' And he died then and there. (His Ram was all inside of him when Ram came outside and nothing was left inside, he died, having no further use for his life).

He said, Has Ram gone outside of me, through my mouth? Till today, I had kept Ram inside my heart; never brought it to my lips, for whatever comes on the lips becomes dirty and is like the leavings of a food, eaten by another. He felt so much troubled by the loss of God inside of him that he died. That is also a form of worship. There are different kinds of devotion, the inner one and the outer one, both are good.

I have no words to describe the love and honour that Sant Ji (Sant Waryam Singh Ji) has showered on me. And Mata Ji's goodness (Mata Ranjit Kaur Ji) has crossed all limits. Her extreme affection fills me with fear. Wherever I went, the Mother said, do eat something. She was always exhorting me. Do this, do that, do another thing. Her guidance was constant. If I stay on in Punjab (here) for one month. I am sure I will leave as a fat man. I acknowledge all the

great love and regard which you people have extended to me. I pray that the saints, leaders, brothers, mothers, sisters and children of this great region may share their happiness with all citizens of India.

The Discourse of Sant Maharaj with Sangat

(Part - I)

(Answers by the holy Sant Sri 108 Sant Ishar Singh Ji Maharaj, Rarewale)

Question - In 'Asa di Var' (Guru Nanak Dev's Ode composed in rag Asa) in the second slok (hymn) we read, O God, True are your lands; real is the whole universe. All the people too are a reality. True are all your forms. It seems to suggest that the world is real (Truth). As against this, in the Guru gospel, the world is portrayed as a mountain of smoke or a dream that has no reality. What then is the real truth?

Answer - According to circumstances, both the above mentioned fundamentals are the truth in their own sphere. In dream, all things seen there appear to be fully true. In the dreams, one feels joys and sorrows. The wife and children (seen there) seem so dear. If the dream shows separation from them, one starts weeping. Some appear kith & kin, some strangers; gains and losses in the dream cause happiness and sorrow. If in the dream, one is pursued by the dacoits, he keeps hiding moving from place to place to save his life. Their fear is visible in the body; he weeps, he shouts for help, his heart begins to palpitate. When he wakes up, he is surprised to remember the atmosphere of the dream; saying that he had been afraid for nothing (those were dream events) that

he had wept for no reason. He rebukes himself for feeling fear and for weeping over the unreal dream events. That was all a dream. Thus commands Guru Maharaj -

This world is as unreal as the dream at night. Whatever is visible is subject to nonexistence Why do you bother?

ਜੇਸਾ ਸੁਪਨਾ ਰੈਨਿ ਕਾ ਤੈਸਾ ਸੰਸਾਰ॥
 ਦ੍ਰਿਸ਼ਟਿਮਾਨ ਸਭੁ ਬਿਨਸੀਐ ਕਿਆ ਲਗਹਿ
 ਗਵਾਰ॥ ਅੰਗ - 808

Further the commandment is -

O fool, you have set your heart on a dream. The kingship victories and enjoyments of the dream vanish into thin air on waking. On waking one is puzzled over his own behaviour. Achievements have run away. Still one pursues one's businesses. No success is achieved. Man is caught in illusion and unreality. What hope is there for the poor thing, the being who misleads his own self.

ਸੁਪਨੇ ਸੇਤੀ ਚਿਤੁ ਮੂਰਖਿ ਲਾਇਆ॥
 ਬਿਸਰੇ ਰਾਜ ਰਸ ਭੋਗ ਜਾਗਤ ਭਖਲਾਇਆ॥
 ਆਰਜਾ ਗਈ ਵਿਹਾਇ ਧੰਧੈ ਧਾਇਆ॥
 ਪੂਰਨ ਭਏ ਨ ਕਾਮ ਮੋਹਿਆ ਮਾਇਆ॥
 ਕਿਆ ਵੇਚਾਰਾ ਜੰਤੁ ਜਾ ਆਪਿ ਭੁਲਾਇਆ॥
 ਅੰਗ - 707

What we call the waking state is also the big dream of life. The dream in the night lasts for a short time, but this dream (illusion) lasts all through life. In the dream, all happenings appeared to be completely true. In that dream, the whole life's events seemed to be true. But when a man leaves this world and goes to the hereafter the whole life story seems to be a dream.

One kilo of flour is for eating, 2,000 Kg of flour is also for eating. Similarly a night's dream is very short, while the whole life's dream is much longer. But both are mere dreams. Just as things seen in the dream are unreal, similarly this world and this life are only the creation of imagination (imaginary

things); nothing more. Just as the tiger of the dream, or dream's deity, and dream's serpent are all nothing more than imaginary things. In the same manner, the tiger, the deity and the serpent of the waking life too have no existence. In fact, they are not there at all. If there is any truth, it is the Self. The soul is formless, changeless, and complete bliss. It stays steady (unruffled), just as a stone stays in its hardness, the water keeps its flowing quality and the sky (ether) stays in its being the medium of sound. Similarly the soul always stays steady in its soul-hood. Except Him, nothing else exists in the world. Guru Maharaj says -

*Behold the Supreme Being everywhere,
 Hear the Supreme Being in all.
 Discourse on One and One alone.
 The Supreme Being has manifested Himself in all.
 He alone is the creator,
 Know not any other than Him.*

ਬ੍ਰਹਮੁ ਦੀਸੈ ਬ੍ਰਹਮੁ ਸੁਣੀਐ ਏਕੁ ਏਕੁ ਵਖਾਣੀਐ॥
 ਆਤਮ ਪਸਾਰਾ ਕਰਣਹਾਰਾ ਪ੍ਰਭ ਬਿਨਾ ਨਹੀ
 ਜਾਣੀਐ॥ ਅੰਗ - 846

Names and shapes are all imaginary. The water of the ocean appears to rise in high tides; in fact it is nothing but water. What we see as cloth is nothing more than yarn. What we imagine to be pots is only clay. We see thousands of ornaments of different shapes, sizes and names. They are all only one thing - gold (God in the world). Even the whole visible world is shaped out one God. Countless waves rise from water, thousands of ornaments are made from gold; so all the universe is nothing else but God in different shapes. The soul is always free and ever living.

When such a belief lives firmly fixed in the mind, then one obtains complete knowledge (Gyan) and one comes to know

about the real nature of the world. The world appears to be nothing more than illusion. The world's existence is not Truth, but is all false in the past, present and future. In reality it is just One soul on all sides. That soul is formless, not subject to change and it lives in the heart of all.

Various ideas are called the mind. These ideas are like the Sky (ether), which is all blank. What is called the world is the creation of the mind (or imagination). It merges into the soul; nothing else but the soul remains. Owing to illusion, the world appears to be separate from the soul. It is not different from the soul. Just as in the dim light a rope lying in partial darkness appears to be the snake, through our ignorance. With this illusion, we greatly fear and call on others for help. So long as there is darkness (ignorance) we are full of fear and keep trembling with (false) fear. We entertain many imaginary situations in the mind. But when it is broad day light, the rope appears. What it really is - a rope and not the snake; and we laugh at our own ignorance. Thus through the lifelong illusion, we have got into the habit of regarding the world as the complete reality. Because of this ignorance, this world appears to us not the outward form of God (which it is), but as a centre of happiness and misery, joys and sorrows, and full of the opposites and all the home of sorrows. It seems to be a very real thing.

So Guru Maharaj says that just as mountain of smoke is not a fact similarly this world is not the reality. It is One God, visible in different shapes and colours. Whatever we see is God Himself alone and nothing else.

Just as anything that has been created out of one thing partakes of its nature and

qualities. Just as a small seed grows into the shape of a huge tree; in fact it is the evolved shape of that very seed. It (tree) may be very beautiful and very expansive, but it is only the spread of that small seed. As Guru Maharaj has ordained -

I have seen seeds of many sorts being sown. When the fruit ripens, the seed appears in the same one form.

ਬੀਜੁ ਬੀਜਿ ਦੇਖਿਓ ਬਹੁ ਪਰਕਾਰਾ॥

ਫਲ ਪਾਕੇ ਤੇ ਏਕੰਕਾਰਾ॥ ਅੰਗ - 736

All things are the abode of God Almighty; in whatever dwelling it lives, it is known by the different names. He alone is the Creator and Doer; everything happens according to the Will of God. It has spread in countless waves or tides; it is difficult to recognize different shapes of One God. Whatever intellect He bestows on us, that is our light (knowledge); that God is the sole Maker and is indestructible. Always, always and yet always, He is the Merciful One; remembering Him, one gets into bliss - thus sayeth Nanak.

ਪਾਰਬ੍ਰਹਮ ਕੇ ਸਗਲੇ ਠਾਉ॥ ਜਿਤੁ ਜਿਤੁ ਘਰਿ ਰਾਖੈ ਤੈਸਾ ਤਿਨ ਠਾਉ॥

ਆਪੇ ਕਰਨ ਕਰਾਵਨ ਜੋਗੁ॥ ਪ੍ਰਭ ਭਾਵੈ ਸੋਈ ਫੁਨਿ ਹੋਗੁ॥

ਪਸਰਿਓ ਆਪਿ ਹੋਇ ਅਨਤ ਤਰੰਗ॥ ਲਖੇ ਨ ਜਾਹਿ ਪਾਰਬ੍ਰਹਮ ਕੇ ਰੰਗ॥

ਜੈਸੀ ਮਤਿ ਦੇਇ ਤੈਸਾ ਪਰਗਾਸ॥ ਪਾਰਬ੍ਰਹਮੁ ਕਰਤਾ ਅਬਿਨਾਸ॥

ਸਦਾ ਸਦਾ ਸਦਾ ਦਇਆਲ॥ ਸਿਮਰਿ ਸਿਮਰਿ ਨਾਨਕ ਭਏ ਨਿਹਾਲ॥ ਅੰਗ - 275

There are five elements in the world - first is Name, second is shape, third is truth, the fourth is the mind and the fifth one is bliss. Out of these Sat (Truth), Chit (thinking) and Anand (pure happiness) is God Himself. He is called *Sachchidanand* (Truth and thinking and bliss). Name and shape can also be called *Maya* (false appearance) and seem (to exist) for a short

period.

Name and form (the physical world) appears resting on universal soul (Sat-Chit-Anand). Name and shape are false concepts. Inside and outside this whole scene, it is all filled with the soul. Name and shape depend on Sat-Chit-Anand (Godly qualities). Sat-Chit-Anand (God Almighty) is ever lasting. Just as water always exists in the ocean, whatever its shapes and names. Some time they are called waves, bubbles and foam; sometime these are not there. We have to link our mind with Sat-Chit-Anand (God), leaving the names and shapes which are false entities. When our mind is joined to one Universal Soul, it will be the end of all the miseries and sorrows. To the extent, one's mentality gets distanced from names and shapes, to that extent it will be merged in God, the sole Reality. To that extent, one would enjoy happiness and peace of mind.

In the end, after hard practice, when the stage of name and shape is passed; and through the Grace of Gurus and great souls, one's inner eyes are opened and one gets divine vision, then name and shape also become a part of Wahe-Guru. This universe will appear the visible shape of God and one's self will get merged in Wahe-Guru (God Almighty). For example, water and waves are just one thing; the ocean never sees the waves (as separate from itself), for it is steady and calm and is itself (ocean itself) in the shape of waves and waters. Realized souls never feel the titles of names and shapes, for all the universal scene, to them it is all their own self, God Himself. The sum total of all this is called God or Creator.

*O my eyes, God has filled His Light in you.
So you should see nothing but God in all*

beings and things. See nothing except God in all. The sighter is blessed with the glimpse of God.

This universe that you see around you is all the form of God, that comes in your sight. Through the grace of the Guru, you see and realize that all is One God -no second. There is no one other than God.

We are blind of eyes (spiritual) sight). If we get some true Guru, he will restore sight to our vision.

ਏ ਨੇਤ੍ਰੁ ਮੇਰਿਹੋ ਹਰਿ ਤੁਮ ਮਹਿ ਜੋਤਿ ਧਰੀ
ਹਰਿ ਬਿਨੁ ਅਵਰੁ ਨ ਦੇਖਹੁ ਕੋਈ॥
ਹਰਿ ਬਿਨੁ ਅਵਰੁ ਨ ਦੇਖਹੁ ਕੋਈ ਨਦਰੀ ਹਰਿ
ਨਿਹਾਲਿਆ॥
ਏਹੁ ਵਿਸੁ ਸੰਸਾਰੁ ਤੁਮ ਦੇਖਦੇ ਏਹੁ ਹਰਿ ਕਾ ਰੂਪੁ
ਹੈ ਹਰਿ ਰੂਪੁ ਨਦਰੀ ਆਇਆ॥
ਗੁਰ ਪਰਸਾਦੀ ਬੁਝਿਆ ਜਾ ਵੇਖਾ ਹਰਿ ਇਕੁ ਹੈ ਹਰਿ
ਬਿਨੁ ਅਵਰੁ ਨ ਕੋਈ॥
ਕਹੈ ਨਾਨਕੁ ਏਹਿ ਨੇਤ੍ਰੁ ਅੰਧ ਸੇ ਸਤਿਗੁਰਿ ਮਿਲਿਐ
ਦਿਬ ਦ੍ਰਿਸਟਿ ਹੋਈ॥ ਐਂਗ - 922

When God-realized vision is attained one realizes oneself. Nothing is visible except God Himself. All is God and God is all.

Everything is Gobind (God); everything is Gobind. There is nothing other than God.

ਸਭੁ ਗੋਬਿੰਦੁ ਹੈ ਸਭੁ ਗੋਬਿੰਦੁ ਹੈ॥ ਗੋਬਿੰਦੁ ਬਿਨੁ
ਨਹੀ ਕੋਈ॥ ਐਂਗ - 485

Question - What is the biggest hurdle in the attainment of True Knowledge?

Answer - The biggest hurdle in the path of attaining true knowledge is our habit of regarding the physical body as our true self. The body is subject to so many ills and full of urine and excreta. Looking upon this body as our true self is certainly the biggest obstruction in the spiritual path.

The atheist philosopher Charvak says that this gross body is our soul. It is visible to all. Something (the soul) which can't be seen, which has no shape, which has no dimensions has no existence at all. This

body can be seen by all, hence we call it our own self. All persons say, I am a child, I am a young person, I am an old man, I am a Brahman, I am a Khatri (castes) I am a black, I am a white, I am brown, I am a *Vaish*, I am a *Shudra* (other caste), I am beautiful, I am male, I am female, I am fat, I am lean and thin, I am tall, I am short-statured etc. All that speaks I, I, or I am full of ego mentality. All these qualities are and have always been associated with gross body. Implying that this body of flesh is our soul, we have attachment to this body and go on saying, I am a young man, I am old, I am a child, I am a Khatri, I am black, I am fair, I am male, I am female, I am fat, I am thin, I am tall, I am short-sized. Our affection is always for the things other than the soul. Anything which is the subject of affection can't be the soul. The soul is far different from these things. We say 'my body'; that implies that I am different from the body, just as we say 'My house'; that means I am separate (owner) and the body is a separate entity. So my body means that in reality I am different and the body is different. We say 'my body'. If myself was identical with body, we would say 'I the body'. Hence we are separate from the body, as 'my house' suggests that I am not the house. I am different. So this grown body can't be the soul. When a person dies, his body is cremated. The soul is never born, never dead. It is immortal, so is learnt from the religious scriptures. To believe that the soul is this body with nine gates (organs) is the height of foolishness.

The body is the covering of the soul; so this covering is called food-based sheath causal (annmayee kosh). Beyond that is the abstract body (Suksham shreer) and the causal self (Karan shareer). In that abstract

body, there are three sheaths, namely, vital sheath, mental sheath and intellectual sheath. Out of these three, one is the life-centre, which many people believe to be the soul. About this too, there are two theories. One group regards the sense organs as the soul. I see, I hear, I stay, I walk. Thus the concept of self seems to comprise the soul because I am the seer, I am the hearer, I walk; so some conclude that these, sense organs are the soul. That is my identity. But this is an illusion, because we have affection for these sense organs (eye, ear etc.). Just as we have the love for the body. These sense organs are not the soul. That in which we have the feel of I-ness can't be the soul. In these organs we have the sense of I-ness, just as I say my eyes are weak, my ears are deaf, my hands shake, my foot is paining. So we call these sense organs my ear, my eye etc. that means that 'the real I' is different from these organs, just 'my house' implies that I am not the house, but separate. Some others believe that life itself is the soul. All organs perform their functions (seeing, hearing etc.) so long as we are alive. When life-breath leaves the body, the body becomes a corpse. The dead body is burnt; some immerse it in water. Without life-breath body is nothing. The body is valued only so long there is life in it. The body is adorned, it is made stout with foods and drinks, so for this reason some think that this life-breath itself is the soul.

People say, 'I am hungry, I am thirsty. Hunger and thirst can be felt only by the living; not by eyes or ears or the nose. I am hungry seems to suggest that life is the soul. Then life would be the soul. Man develops love for life and fears lest my life should leave my body. We say my life; that means that I am separate, and life is separate (it

is mine). So life can't be identical with the soul. Others say that if you don't recognize life to be the same as the soul, then mind is surely the soul. Mind should be called the soul, because without the mind, the sense organs can have no knowledge. When we are taking our meals, the house wife enquired if the salt and pepper is in the correct quantity in the pulses. Often times we say, I was eating absentmindedly. I will give reply to your question after I eat the next morsel. The feel of joy and sorrow is experienced by the mind not by the eyes, ears, nose and hands. People say, I am happy, I am feeling miserable, therefore, mind is proved to be soul.

If we accept mind as the soul, that too is a baseless argument. Often we say, my mind is not steady; my mind has no taste for prayers and holy reading. We call the mind as ours; we feel love for it. We say my mind; that proves that I am separate and mind is separate. Therefore mind too can't be called the soul (it is my mind, like my house, my book), because the soul can't belong to me.

If mind is not the soul, then intellect can be accepted as the soul. The soul which is the abode of bliss. People are heard saying, I enjoy myself, I do this act, I returned there, I would go to the next world. It seems correct to designate the intellect as the soul. But when we say, my intellect is very sluggish; about an other we say that his intellect is very sharp, we talk of my-ness. My intellect means, I develop love for it. My intellect means that I am separate and my intellect is separate (my quality).

We say intellect is not the soul, but inside the intellect lives the soul, which is the centre of bliss. That may be the soul. The sheath of Bliss is also called the source body. It is also called ignorance as well as

lack of knowledge. Also such experiences are narrated as; last night I enjoyed sound sleep, full of bliss. I had no consciousness then, I knew nothing. This condition is called ignorance and also absence of knowledge, it is also called illusion (Maya). If someone says that this bliss of illusion (in sound sleep, when we have no consciousness) is the soul it can't be the soul. But if someone says, that the soul is one that is the on-looker of this bliss of unconsciousness; that the soul is the Light which is witness to this ignorance (unconsciousness) then the fact is that the soul is never born, never dead and is the form of perfection. Then we will certainly decide on it as our real self. Such a soul is surrounded by five covers (five sheaths or *Koshes*). It is different from all these. That is one's real self.

The upshot of this whole discussion is that we regard this body, full of urine and excreta as our self and develop affection for it, that is the cause of gross ignorance. The biggest hurdle in the path of true knowledge is believing this dirty body full of urine and excreta as our real self. Regarding other covers such as life and sense organs, mind and intellect as our soul are other strata of ignorance. These are coverings of ignorance. For achieving divine knowledge, it is very necessary to keep company with great men who are self-realized souls, also perfect faith in Guru Granth Sahib, listening to *Bani*, contemplating it and believing in it with full faith. The man is always forgetting his real self, under the influence of Maya (illusion)-

*O my mind, your real self is all light.
Realize yourself.*

ਮਨ ਤੂੰ ਜੋਤਿ ਸਰੂਪੁ ਹੈ ਆਪਣਾ ਮੂਲੁ ਪਛਾਣੁ ॥
ਅੰਗ - 441

The soul and God are one and the same.

Therefore -

Everywhere see God, hear God, speak of only One Reality that is God (there is no second reality). Don't recognize anyone other than God, Who has spread Himself all through the universe.

ਬ੍ਰਹਮ ਦੀਸੈ ਬ੍ਰਹਮ ਸੁਣੀਐ ਏਕੁ ਏਕੁ ਵਖਾਣੀਐ ॥
ਆਤਮ ਪਸਾਰਾ ਕਰਣਹਾਰਾ, ਪ੍ਰਭ ਬਿਨਾ ਨਹੀ
ਜਾਣੀਐ ॥ ਅੰਗ - 846

On account of ignorance, we regard this dirty body full of urine and excreta as our real self and so we suffer no end of miseries.

*Lord! what can I say? such is illusion
Under its influence are objects not such as
thought to be.*

ਮਾਧਵੇ ਕਿਆ ਕਹੀਐ ਭ੍ਰਮੁ ਐਸਾ ॥
ਜੈਸਾ ਮਾਨੀਐ ਹੋਇ ਨ ਤੈਸਾ ॥ ਅੰਗ - 657

Discourse

Part - II

Sant Maharaj (Sri 108 Sant Ishar Singh Ji Maharaj, Rare Sahib Wale used to give audiences in Chandigarh in May, 1961. Today being a holiday, a large number of seekers and also lovers of other religions had collected there. One of the enthusiasts asked me to request Sant Maharaj to give a detailed description of inner circles (chakkars), which the congregation wanted to hear. Accordingly the great saint was requested to accede to their request. On that day, a lot of seekers were present, also many great souls (Mahatmas), including many Hindu Mahatmas also were in attendance. Many saints talk of *Kundalini*; also there is a mention of the piercing of the inner *chakkars*. There are different theories about them. Sant Ji was requested to throw light in connection with these 'circles'.

Answer - On hearing this petition of the people, Sant Ji Maharaj said that according

to the philosophy of the Gurus, breaking of these chakkars is not necessary at all. Guru Nanak's religion is very convenient and simple. It can be called the path of 'Surat Sabad Marg' (The way of contemplation on Sabad, the holy word, sound) or the Path of the Naam (God's Name). Even a person of the lowest intellect, if he has full faith, can walk on this Path, by taking prayers and recitation of the holy Name and texts and can cross this ocean of the world; whereas it is beyond the capacity of the common people in this Iron Age (Kalyug), to negotiate this tough path (of bursting the chakkars). The reason is that in this Iron Age, people's conduct, behaviour and diet have become very low class. Their body has not that strength which is needed for bursting those Chakkars, nor is there such a favourable atmosphere, where one can sit and practise such penances constantly. If a thousand seekers try practising these austerities, the heat produced by *pranayam* (breathing exercises) will drive 999 out of them mad. That condition would be beyond cure, even by the doctors. In olden ages, bodies used to be strong and stout. Celibacy was practised fully; and the body had the latent strength to endure these very tough penances. In today's age, there is the forceful churning of the thoughts, and the bonfire of desires renders a man slave to desire for wealth and property. In such an atmosphere man's inner consciousness is unable to think of anything other than *maya* (false pleasures of the world). For this reason, Guru Nanak, the emperor of the universe, keeping in view the foul atmosphere of the world, popularized such methods, as are simple and comfortable, in short, he put the seeker on the path of detachment while working in the world with devotion as the chief way, and knowledge of

the fundamentals. To help that programme, he popularized such practices as doing one's duty, sharing what you have with others and repeating the Name of God, the men of the Guru also call it repeating God's Name and bathing in sacred spots. On this path all can walk, educated or uneducated, the rich or poor

Your question is about *hathyog* (ਹਠਯੋਗ) (practices of body torture), so make a detailed study of these. In bygone times, these used to be practised in places of solitude and caves far from the madding crowds. The chief items of that school are *Dhoti*, *Neti*, *Basti*, *Tratak*, *Neoli* and *Kapalbhati* which are explained below.

Dhoti (ਧੋਤੀ) - Take a long bandage of very fine cloth, 4 finger broad and 22½ ft. long. Dip it in luke warm water and practise inserting it inside your mouth, at the rate of 1½ ft. per day. The whole cloth will be pushed inside your body in 15 days. Then holding the outer end of the cloth firmly in your teeth, try to take out the whole cloth bit by bit.

This would clean up the regions of one's liver and the intestines.

Neti (ਨੇਤੀ) - Take a strong cotton thread very fine and soft, as long as the stretched human hand. Push it inside through the nose, by holding the breath and pushing it through the power of the breath. Take it out of the mouth as if you are churning the curds. In this way, the impurities of the nose and the throat can be cleaned.

Basti (ਬਸਤੀ) - Sit in a water tub, dipping yourself upto the navel. Take a bamboo tube 6 finger long and one finger thick. Insert it through anus and by the force of breath push it inside and also pull in water. This is doing enema in water.

Tratak (ਤ੍ਰਾਟਕ) - Focus your eyes without winking on any object concentrating your attention on it till that time, when the eyes through sheer fatigue begin to water. This exercise could destroy all diseases of the eyes. It can break the evil tendencies towards too much sleep and laziness. Just as a very precious article is kept with great care, similarly know that the centre for this exercise are the nostrils or the middle place of the two eyebrows.

Neoli (ਨਿਉਲੀ) - Sit, keeping down both the shoulders, straighten your back, and keep your back bone erect at 90 degrees. With the power of the breath, move the stomach (belly) right and left, up and down, as if you are churning the curd.

Kapal Bhati (ਕਪਾਲਭਾਤੀ) - One has to do *Pranayam* (breathing exercises) in three stages drawing in the breath, holding it, and releasing the breath (*rechak*) again and again; like the blacksmith's bellows that keeps fire burning bright.

Pranayam (ਪ੍ਰਾਣਾਯਾਮ) - Controlling the movement of breathing is called *Pranayam*. According to specialists, there are in the human body 72 crore 72 lakh, 10 thousand and 201 nerves and ducts. Ten out of them are helpful in the breathing exercises. There are many methods of *Pranayam* which are very difficult. But the two types are more prevalent, moon-limbed and sun-limbed. There are three chief *nadis* (nerves or ducts) in our bodies. They are *Ida*, to the left of the nose; *Pingala* to the right and the one between the two is called *Sukhmana*.

tongue. This liquid (*Amrit*) is also called *Amar Varani* (immortal drink).

Now I will briefly explain to you about

the 6 chakkars in the body. Those who want to take notes may note them down.

1. Mooldhar Chakkar (ਮੂਲਧਾਰ ਚੱਕਰ) - (Pelvic Plexus) This is the Chakkar in the region of the anus. This contains an inverted yellow lotus with four petals. The four petals are its 3 corners in the shape of the letter ਵ, ਸ, ਖ, ਸ਼, (va, sa, kha, sha). This is the centre of the desire for knowledge. Above where *Kundalini Nadi* is situated, is the throne of sex, where are born the ideas of woman, swan, and mind. At this place, the yogis meditate on God Ganesh.

2. Swadhishtan Chakkar. (ਸਵਾਦਿਸ਼ਠਾਨ ਚੱਕਰ) - (Hypogastric plexus) It lies at the root of the male organ and it contains an upward positioned lotus with 6 petals. Its 6 petals are symbolized by ਬ, ਭ, ਮ, ਯ, ਰ, ਲ ba, bha, ma, ya, ra, la). At this position, the ascetics meditate on God *Brahma* (Creator).

3. Mani Poorak Chakkar (ਮਣੀਪੂਰਕ ਚੱਕਰ) - (Epigastric Plexus or Solar Plexus) - It is located in the region of the navel. It has an inverted lotus of blue colour having 10 petals. Its 10 petals are the letters ਡ, ਢ, ਣ, ਤ, ਥ, ਦ, ਨ, ਪ, ਫ (da, dha, na, ta, tha, da, dha, na, pa, pha). In this position the ascetics think of God Vishnu.

4. Anahat Chakkar (ਅਨਾਹਤ ਚੱਕਰ) (Cardiac Plexus) - It is golden coloured lotus with 12 petals located in the heart. Its 12 sounds are the 12 letters ਕ, ਖ, ਗ, ਘ, ਙ, ਚ, ਛ, ਜ, ਝ, ਞ, ਟ, ਠ (ka, kha, ga, gha, na (as in long) cha, chha, ja, jha, na, ta, tha). These are its 12 petals. Here the yogis meditate upon *Rudra* (Shiva) along with His mountain abode (*Kailash Parbat*).

5. Vishuddha Chakkar (ਵਿਸ਼ੁਧ ਚੱਕਰ) (Carotid Plexus) - Here is smoke-coloured upward looking lotus with 16 petals, which is situated in the throat. Its 16 petals stand for 16th letters namely ਅ, ਆ, ਇ, ਈ, ਉ, ਊ,

ਰਿ, ਰੀ, ਲ੍ਰ, ਲ੍ਰੀ, ਇ, ਏ, ਓ, ਔ, ਅੰ, ਆ (a, aa, i, ee, u, uoo, ri, ree, lri, lree, a, aie, o, ou, ang, aan (n as in long). It is called jalandhar throne. Here one meditates on the self.

6. Aagiya Chakkar (ਆਗਿਆ ਚੱਕਰ) (Medular Plexus) - It is located at the root of two eyes and the nose. Here is situated an inverted lotus with 2 petals, white like the moon. Its two letters are ਖਯ, ਗਯ (khya, gya). It is called the *Udiyang* throne. Here the yogis meditate upon God Himself, the Giver of salvation. *Phal* (fruit or result). Whatever fruit (gain) is achieved by the meditation of the various above-mentioned Chakkars, can be obtained by the meditation of this single Chakkar. Hence the great souls lay emphasis on concentrating one's mind on this Chakkar, named Agya Chakkar. When living force and mind are stabilized at this place, it has the potentiality of being able to practise *Samparigyat Samadhi* (Transcendental Meditation).

At this point meet the three *nadis*, named *Ida*, *Pingla* and *Sukhmana*, that start from Mool-dhar Chakkar come by different routes. Hence this confluence of the three *Nadis* is called *Triveni*. (at *Triveni* at Prayag or Allahabad, meet the three rivers, Ganga, Yamuna and the underground Saraswati). *Ida* is the *Ganga*, *Pingla* is *Yamna*, and *Sukhamna* is the river *Saraswati* of this *Triveni*. This place (*Triveni*) has been designated the king of all pilgrimages; it is also called *Atam Teerth* (place of the pilgrimage of the self or the bath at the sacred tank of Amritsar. By bathing the mind at this confluence, all sins are destroyed. Guru Maharaj has ordained thus -

(... to be continued)



ਆਤਮ ਮਾਰਗ ਦੀ ਨਵੀਂ ਮੈਂਬਰਸ਼ਿਪ ਅਤੇ ਰਿਨੀਊਵਲ ਅਤੇ ਪੁੱਛਗਿਛ

ਸ਼੍ਰੀ ਮਾਨ ਸੰਤ ਬਾਬਾ ਵਰਿਆਮ ਸਿੰਘ ਜੀ ਮਹਾਰਾਜ ਰਤਵਾੜਾ ਸਾਹਿਬ ਵਾਲਿਆਂ ਦੁਆਰਾ ਲਿਖਤ ਪੁਸਤਕਾਂ, ਗਾਇਨ ਕੀਤੀਆਂ ਸ਼ਬਦ ਗੁਰਬਾਣੀ ਕੀਰਤਨ ਦੀਆਂ ਕੈਸਟਾਂ, CD.'S, VCD.'S, DVD.'S MP3 ਦੇ ਆਪ ਜੀ ਹੇਠ ਲਿਖੇ ਐਡਰੈਸਾਂ ਤੋਂ ਮੰਗਵਾ ਸਕਦੇ ਹੋ ਜੀ।

For all enquiries about 'Atam Marg' viz. renewal, new membership, non-receipt of the magazine etc. and also for procuring audios, videos & CDs; and books authored by Sant Waryam Singh Ji, please contact the following

England (U.K.)

For U.K. renewal of Atam Marg Magazine please forward cheque £ 40.00 payable to A.M.S.S.E.C.T. (U.K.) 9 Elizabeth Road, Walsall, West Midlands WS5 3 PF

**Atam Marg Spiritual Scientific
Educational Charitable Trust (U.K.)**

9 Elizabeth Rd.,

Walsall West Midlands, WS5 - 3PF U. K.

Contact : Mrs. Gurbax Kaur,
Mr. Jagtar Kulair : Tel : 0044-1212002818
Fax : 0044-1212002879
Voicemail : 0044-8701654402
Raj Mobile : 0044-7968734058
Email : info@atammarguk.com

U.S.A.

**Vishav Gurmat Roohani Mission
Charitable Trust,**

Contact : Baba Satnam Singh Ji Atwal,
2755, Guildhall Dr., San Jose,
Ca - 95132, U.S.A

Phone :- 001-408-263-1844,
vgrmctusa@yahoo.com

S. Baldev Singh Grewal

**Fremont, U.S.A - 001-510-249-9456
Canada**

Bhai Sarmukh Singh Pannu

Phone - 001-604-433-0408

Bhai Parmjit Singh Sandhu

Cell: 001-250-600-3072

Bhai Tarsem Singh Bains

Cell : 001-604-862-9525, Phone : 001-604-599-5000

IN INDIA

09417214391, 09417214379 09814612900, 9417214378

Email: atammarg1@yahoo.co.in

Australia

Bibi Jaspreet Kaur

Cell : 0061-406619858

Email :- jaspreetkaur20@hotmail.com

Foreign Membership

	Annual	Life
U.S.A.	60 US\$	600 US\$
U.K.	40 £	400 £
EUROPE	50 Euro	500 Euro
AUS.	80 AUD\$	800 AUD\$
CANADA	80 CAN\$	800 CAN\$